स्वर्णिम सेतु

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अप्रैल २०१६

अग्निशिखा अप्रैल २०१६ वर्ष ४६, अंक ९, पूर्णांक ५४८

विषय-सूची

स्वर्णिम सेतु

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के वचन)

सन्देश	श्रीअरविन्द	३
श्रीमां तथा अतिमानसिक अवतरण		६
भगवान् और मानवता		१०
हमेशा खुले रहो		१३
श्रीमां की 'शक्ति'		१८
श्रीमां की ओर खुलो		२३
श्रीमां के लिए चैत्य भाव		३१
समर्पण		३३

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४०
एक साधक के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४४
कुछ मनके जिन्दगी के	कनिष्ठा	४८
ढाई आखर प्रेम का...	वन्दना	५३
झंझुनू की सूचना		५८

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website: www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

किन्हीं भी कठिनाइयों से अपने-आपको विक्षुब्ध या हतोत्साह न होने दो बल्कि चुपचाप और सरलता के साथ स्वयं को माताजी की 'शक्ति' के प्रति खोलो और उन्हें तुम्हारा परिवर्तन करने दो।

—श्रीअरविन्द

सम्पादकीय : श्रीअरविन्द तथा श्रीमां का धरती पर आगमन पृथ्वी पर एक 'नूतन युग' के प्रारम्भ का, 'नूतन चेतना' की सुगबुगाहट का द्योतक है। इतिहास के किसी अलिखित मुहूर्त में श्रीअरविन्द ने श्रीमां को मानवता के हृदय में प्रतिष्ठित कर दिया। उन दोनों की तपस्या के फलस्वरूप धरती पर आज 'अतिमानसिक चेतना' कार्यरत है और मानवता को आगामी भविष्य के लिए गढ़ रही है। भविष्य को उद्घाटित करने की कुञ्जी है दिव्य मां के पास और उनका लक्ष्य है—मानवता को वर्तमान संकटपूर्ण पथ से उबार कर आगामी कल के अतिमानवता के पथ पर उतारना। जैसा कि 'सावित्री' के भविष्यसूचक अन्तर्दर्शन में श्रीअरविन्द ने कहा है :

यदि यह 'वही' है जिसकी श्रुति इस संसार में सुनी गयी है,
तब तो किसी अद्भुत सुखद रूपान्तर पर क्या चकित होना?
परम आनन्द का प्रत्येक सहज चमत्कार
इसी देवी के रूपान्तरकारी अन्तर की कीमियागिरी है।

—'सावित्री', पृ. ७२३

love

मैं सिर्फ श्रीअरविन्द[१] की शक्ति हूं, तथा अपने सभी बच्चों की माता।

मेरे बच्चे मेरी चेतना के और मेरी सत्ता के समान रूप से अंश हैं। जब वे रूपान्तरित तथा सिद्ध हो जायेंगे तब सबको मेरे तथा श्रीअरविन्द के प्रत्येक पक्ष को अभिव्यक्त करने का समान अधिकार होगा।

एक सर्वनिष्ठ अभिव्यक्ति की एकजुटता में सबकी एकता ही धरती पर नवीन तथा दिव्य विश्व के सृजन को स्वीकार करेगी। प्रत्येक अपना अंश लायेगा, किन्तु कोई अंश तब तक पूर्ण न होगा जब तक वह समस्त की एकजुटता में एक शक्ति न बन जाये।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ८४ —श्रीअरविन्द

[१] १९२७ के आस-पास श्रीमां द्वारा आश्रम का कार्यभार संभालने के बाद श्रीअरविन्द ने यह लिखा था। यहां वे श्रीमां के दृष्टिकोण से कह रहे हैं। –सं.

श्रीमां तथा अतिमानसिक अवतरण

श्रीमां का शरीर-धारण : धरती के लिए एक सुयोग

क्या मेरा यह सोचना ठीक है कि श्रीमां एक व्यक्ति के रूप में समस्त भागवत शक्तियों को मूर्तिमान् करती हैं और अधिकाधिक भागवत कृपा को भौतिक स्तर पर उतार लाती हैं...

हां।

... और उनका मूर्तिमान् होना सम्पूर्ण भौतिक स्तर के लिए परिवर्तित और रूपान्तरित होने का एक सुयोग है?

उनका मूर्तिमान् होना पृथ्वी की चेतना के लिए अपने अन्दर अतिमानस को ग्रहण करने तथा उसे सम्भव बनाने के लिए पहले जो रूपान्तर जरूरी है उसे प्राप्त करने का एक सुयोग है। बाद में अतिमानस के द्वारा और भी रूपान्तर साधित होगा, परन्तु सारी पार्थिव चेतना अतिमानसभावापन्न नहीं हो जायेगी—सबसे पहले एक नयी जाति उत्पन्न होगी जो अतिमानस को प्रकट करेगी, जैसे कि मनुष्य मन को अभिव्यक्त करता है।

श्रीमां सीधे ऊपर के अपने लोक से साधक पर कार्य नहीं करतीं, यद्यपि वे यदि ऐसा करना चाहें तो कर सकती हैं—यहां तक कि वे संसार को एक ही दिन में अतिमानसभावापन्न भी बना सकती हैं; पर उस हालत में यहां रची जाने वाली अतिमानसिक प्रकृति ठीक वैसी होगी जैसी कि वह ऊपर है, न कि अतिमानसिक पृथ्वी की ओर विकसित होती हुई अज्ञानमयी पृथ्वी, एक ऐसी अभिव्यक्ति जो देखने में ठीक वैसी ही नहीं होगी जैसा कि अतिमानस है।

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण सत्य है।

हम व्यक्तिगत रूप से श्रीमां के 'प्रकाश' और 'शक्ति' के प्रति जितना

अधिक खुलते हैं उतनी ही अधिक उनकी शक्ति विश्व में प्रतिष्ठित होती जाती है—ऐसा ही होता है न?

वह रूपान्तरकारी शक्ति है जो प्रतिष्ठित होती है—वैश्व 'शक्ति' तो हमेशा विद्यमान रहती है।

*

अतिमानस को उतारने के लिए ही श्रीमां आयी हैं और यह अवतरण ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति को यहां सम्भव बनाता है।

अन्तिम लक्ष्य और पथ

मैं यही कह सकता हूं कि इस योग का अन्तिम लक्ष्य है—अतिमानसिक सत्य को यहां उतारना और उसे क्रियान्वित करना। (बाकी सभी उद्देश्य और स्तर प्रारम्भिक और सहायक हैं)। यह मान लिया गया है कि यह कार्य मेरे और माताजी के द्वारा किया जायेगा और इस लक्ष्य को चरितार्थ करने तथा इस सत्य को यहां उतारने के लिए साधकों ने हमें स्वीकार किया है और अब उन्हें हमारे पथ-प्रदर्शन में चलना होगा और हमारे ही द्वारा अवतरित होती हुई वस्तु को ग्रहण करना होगा। वे उसे अन्यथा नहीं पा सकते। अगर वे और किसी सत्य का अनुसरण करें या उसे चाहें तो ऐसा करने के लिए वे स्वतन्त्र हैं, लेकिन यहां रह कर वे यह नहीं कर सकते, क्योंकि यहां वे सफल नहीं होंगे; क्योंकि यहां 'भागवत शक्ति' दूसरे किसी लक्ष्य की चरितार्थता के लिए कार्य नहीं कर रही। यह भी देखा गया है कि अगर वे हमारे द्वारा आयी उस 'शक्ति' को अस्वीकार कर दें और किसी दूसरे उद्देश्य का अनुसरण करें तो वे इस पथ से हट जायेंगे और न हमारी उपस्थिति का, न इस योग का लाभ उठा पायेंगे, और न ही उस महान् कार्य की सामञ्जस्यमय स्वर-संगति में अपना सुर पा सकेंगे जो यहां किया जा रहा है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ३२, ३३, ३४, ९८

श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के प्रभाव को ग्रहण करने के लिए श्रद्धा के साथ-साथ आवश्यकता है बस आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करने के लिए पूर्ण सच्चाई और प्रभाव के प्रति खुलने के लिए संकल्प तथा सामर्थ्य की; लेकिन सामान्यतः यह सामर्थ्य सच्चाई तथा श्रद्धा के परिणाम-स्वरूप आता है।

आश्रम के बाहर रह कर भी योग का अनुसरण करना पूरी तरह सम्भव है। उत्तर तथा दक्षिण भारत में, दोनों जगह, ऐसे बहुत हैं जो यह करते हैं।

*

वैयक्तिक स्पर्श होता है, लेकिन अधिकांशतः यह आन्तरिक निकटता होती है जिसमें भौतिक सम्पर्क बस उसे सहारा देने के लिए होता है। लेकिन इस आन्तरिक सम्पर्क को दूर रह कर भी भली-भांति पाया जा सकता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १०६-०७ —श्रीअरविन्द

भगवान् और मानवता

पुकार के प्रति निष्ठावान् बनो

जब मैंने अन्तरात्मा के प्रकाश और भागवत पुकार के प्रति निष्ठावान् बने रहने की बात की थी... तो मैं सभी संकटों और प्रहारों के दौरान इसकी महान् आवश्यकता के बारे में सुझाव दे रहा था—यानी तुम्हें ऐसे सभी सुझावों, आवेशों, आकर्षणों पर कान देने से एकदम इन्कार कर देना चाहिये जो 'सत्य' की पुकार का, 'प्रकाश' के अनिवार्य संकेत का विरोध करें। सभी सन्देहों और निराशा के समय तुम्हें यह कहना चाहिये, "मैं भगवान् का हूं, मैं असफल नहीं हो सकता" ; अपवित्रता और अनुपयुक्तता के सभी विचारों को यह उत्तर देना चाहिये, "मैं श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के द्वारा चुना हुआ शाश्वतता का बालक हूं; मुझे बस अपने और उनके प्रति सच्चा बनना है—विजय सुनिश्चित है; अगर मैं गिरा भी तो, निश्चय ही मैं फिर से उठ जाऊंगा"; उन सभी आवेगों को, जो किसी और आदर्श की सेवा करने के लिए मुड़ जायें, तुम्हें कहना चाहिये, "नहीं, वह नहीं, यही महानतम है, यही 'सत्य' है, केवल यही मेरी आन्तरिक आत्मा को सन्तुष्ट कर सकता है; भागवत यात्रा के अन्त तक मैं सभी अग्नि-परीक्षाओं और विपत्तियों को सहूंगा।" 'प्रकाश' और 'पुकार' के प्रति निष्ठावान् बने रहने का मेरा यही अर्थ था।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १०४

सखा और मां

तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिये कि कोई भी चीज तुम्हारे प्रति हमारे मनोभावों को बदल सकती है। वह जो तुम्हें खुल कर दिया जा रहा है, प्राणिक मानव प्रेम नहीं है जिसमें बाहरी चीजों से उतार-चढ़ाव आते हैं : तुम्हारे प्रति हमारा मनोभाव हमेशा समान और दृढ़ रहता है, हम तुम्हारी सहायता कर रहे हैं, तुम्हें ऊपर उठा कर उस 'प्रकाश' की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं जहां अपनी अन्तरात्मा और अपने हृदय के मिलाप से तुम 'सखा' तथा 'मां' को पहचान लोगे।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १०१

व्यक्ति चाहे जितना भी लड़खड़ाये

भूल या सजा देने का कोई प्रश्न ही नहीं है—अगर हम लोगों को उनकी भूलों के लिए अपराधी ठहरायें या उन्हें सजा दें, और साधकों के साथ ऐसे व्यवहार करें मानों वे न्याय के कठघरे में खड़े हों, तो कोई साधना सम्भव नहीं। मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे विरुद्ध तुम्हारी बात कैसे न्यायोचित है। साधकों के प्रति हमारा एकमात्र कर्तव्य यही है कि हम उन्हें उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि की ओर ले जायें—हम परिवार के मुखिया की तरह नहीं बर्ताव कर सकते कि उनके घरेलू झगड़ों में पड़ें, किसी एक की तरफदारी करें, किसी दूसरे के विरोध में अपनी धौंस जमायें! चाहे जितनी बार 'क्ष' डगमगाये, हमें उसका हाथ थामना होगा, उसे फिर से उठाना होगा और एक बार फिर उसे भगवान् के पथ पर बढ़ाना होगा।...

मानवता के साथ भगवान् का सम्बन्ध

माताजी और मैं सभी के साथ भागवत विधान के अनुसार क्रिया करते हैं। हम, अमीर हो या गरीब—मानव मानकों के अनुसार जो उच्चवर्गीय हैं या निम्नवर्गीय—हर एक को एकसमान प्रेम और सुरक्षा प्रदान करते हैं। साधना में उनकी प्रगति ही हमारी मुख्य चिन्ता है—क्योंकि वे यहां इसीलिए आये हैं, अपनी जीभ और अपने पेट की सन्तुष्टि के लिए नहीं। वे सामान्य प्राणिक मांगों को मनवाने या पद, स्थान या सुविधाएं प्राप्त करने के लिए लड़ने-झगड़ने नहीं आये। उनकी प्रगति इस पर निर्भर करती है कि वे माताजी के प्रेम और उनकी सुरक्षा का प्रत्युत्तर किस प्रकार देते हैं—क्या वे उन शक्तियों को ग्रहण करते हैं जिन्हें वे सब पर समान रूप से बरसाती हैं, जो वे देती हैं क्या उसका वे सदुपयोग करते हैं या दुरुपयोग? लेकिन बाहरी तौर पर माताजी सभी के साथ समान रूप से व्यवहार करें, ऐसा न उनका अभिप्राय होता है न कोई बाध्यता—और यह मांग करना कि उन्हें ऐसा करना चाहिये, अनर्गलता और मूढ़ता है—और अगर वे ऐसा करें तो वे चीजों की सच्चाई और भागवत विधान को झुठला देंगी। प्रत्येक साधक के साथ उसके स्वभाव, उसकी क्षमताओं, उसकी सच्ची आवश्यकताओं (उसके दावों और कामनाओं के अनुसार नहीं) और उसकी आध्यात्मिक

भलाई के लिए क्या सर्वोत्तम है, उसके अनुसार बर्ताव किया जाता है। रही बात यह कि उसे कैसे किया जाये, तो हम ऐसे साधकों के अज्ञान के द्वारा हमें दिये आदेशों का पालन करने से एकदम पूरी तरह इन्कार करते हैं जो साधक ऐसा मानते हैं कि माताजी को समानता या न्याय के लिए उन साधकों के मानकों और उनके विचारों या उनके प्राण की मांगों या उन धारणाओं के अनुसार क्रिया करनी चाहिये जिन्हें वे अपने साथ बाहरी जगत् से लाये हैं। हम अपने अन्दर स्थित 'प्रकाश' के अनुसार और उस 'सत्य' के लिए क्रिया करते हैं जिन्हें हम इस पार्थिव प्रकृति में सुस्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ११६

हर एक को अपनी-अपनी गलत प्रतिक्रियाओं से पिण्ड छुड़ाना होगा —वे इसके लिए ही यहां हैं। और क्या इलाज है भला? अगर वे इसे करने के लिए तैयार नहीं हैं तो हम सामान्य जीवन के धरातल पर ही बने रहेंगे जहां व्यक्ति को बड़े परिवार के साथ रहते हुए करना पड़ता है—लड़ाई-झगड़ों में पड़ना, कभी मेल-मिलाप कराना, शान्त कराना, कभी डांटना-डपटना, सजा देना तो कभी भाषण देना, हर हालत में तब तक चीजों को किसी तरह चलाते रहना जब तक कि दूसरा बखेड़ा न खड़ा हो जाये। इसका कोई अन्त नहीं और हमने इस सबको बहुत पहले ही त्याग दिया। यहां प्रत्येक को स्वयं को सुधारना होगा—इसके सिवाय और कोई तरीका नहीं है।

अधीर या हतोत्साह न होओ

मानव चेतना अनगिनत पदार्थों से बनी है और सभी शीघ्रता से एक सतत आध्यात्मिक प्रयत्न को सहन नहीं कर सकते—उन्हें प्रशिक्षित करना, प्रबुद्ध करना, उनकी आदतों को बदलना पड़ता है। इसी कारण माताजी और मैं हमेशा समय देते हैं कि अन्तरात्मा दूसरे भागों के विकास के साथ-साथ ऊपर उठे और अगर इसमें समय लगे तो कोई हर्ज नहीं, बशर्ते व्यक्ति के अन्दर केन्द्रीय श्रद्धा और संकल्प हो —निश्चित रूप से तुम्हारे अन्दर है। अधीर मत बनो या इस चीज से हतोत्साह न होओ कि चीजें तेजी से नहीं चल रहीं। अभीप्सा करो, अपने-आपको श्रद्धा के सूर्यालोक में बनाये रखने का प्रयास करो और बीज को पनपने दो।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ११७

हमेशा खुले रहो

प्रयास आवश्यक है

श्रीमां के प्रकाश और शक्ति के प्रति निरन्तर अभीप्सा करते रहने से ही तुम सच्ची और सतत प्रगति कर सकते हो। श्रीमां के प्रकाश और शक्ति को पाने के लिए बार-बार, दृढ़तापूर्वक आग्रह करने पर तुम विक्षुब्ध होने की अपनी आदत और व्यवस्था के अभाव को कम करते-करते, अन्त में पूरी तरह से इनसे पिण्ड छुड़ा सकते हो। केवल इसी तरह क्रमशः निम्न सत्ता को बदला जा सकता है ताकि अन्ततः 'सत्य' और 'प्रकाश' का निर्णायक अवतरण हो सके।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १३५

हमारी उपस्थिति, शक्ति, शान्ति, प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ हैं। यह ऐसी चीज है जो तुम्हें स्पष्टतः अनुभव करनी चाहिये और इसकी चेतना को हमेशा अपने हृदय में संजोये रखना चाहिये। अगर तुम इतना कर लो तो बाकी सब का महत्त्व बहुत गौण हो जाता है (तुम्हारी कठिनाइयां, पुराना स्वभाव इत्यादि) और तब सभी कठिनाइयां अपने-आप क्रमशः विलीन हो जायेंगी।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १०५

सभी के अन्दर प्राणिक दोष और कठिनाइयां और साथ ही मन की कमजोरियां एक-जैसी होती हैं। व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक खुले रहना और भगवान् में अपने विश्वास को दृढ़ बनाये रखना चाहिये; तब धीरे-धीरे करके माताजी की शक्ति सब कुछ सही जगह पर बिठा देगी।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २१८

अपने हृदय में एकाग्र होकर सब कुछ माताजी के सामने रख दो ताकि उनका 'प्रकाश' सर्वोत्तम रूप से कार्य कर सके।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४७

To express Harmony
of all things
Simplicity
is the best.

श्रीमां की 'शान्ति' तुम्हारे ऊपर स्थित है—अभीप्सा और नीरव आत्म-उद्घाटन द्वारा वह नीचे उतरती है। जब वह प्राण और शरीर को अपने अधिकार में कर लेती है तब समता पाना आसान हो जाता है और अन्त में हर परिस्थिति में समभाव रखने की प्रवृत्ति अपने-आप ही आ जाती है।

*

इस योग में केवल वे ही सफल हो सकते हैं जो अभीप्सा और ध्यान के द्वारा माताजी पर एकाग्र हो सकें ताकि उनके प्रति उद्घाटित होकर उनकी कृपा को ग्रहण कर सकें, अपने अन्दर उनकी क्रिया को चरितार्थ होने दें।

*

जो माताजी के प्रति खुले हैं, अपनी आन्तरिक सत्ता में उनके निकट हैं, उनकी इच्छा के साथ एक हैं, वे ही हैं मां के बालक और उनके निकटतम—वे नहीं जो भौतिक रूप से उनके समीप रहते हैं।

—श्रीअरविन्द

CWSA खण्ड ३२, पृ. १३५, १३६, ४९७

साधना का त्रिविध प्रयास

यह एकदम सत्य है कि अभीप्सा, त्याग और श्रीमां की स्मृति और उनके प्रति समर्पण तथा उनकी चेतना के साथ एकत्व साधना के मुख्य साधन हैं। यह भी सत्य है कि अपने लिए, अपने ही साधनों से अतिमन की खोज करना एक मूर्खता है; इसे मैंने प्रारम्भ में ही कहा है और अब अधिकाधिक बल के साथ कह रहा हूं। यह भी सत्य है कि हमारा मुख्य लक्ष्य है, दिव्य प्रभु के साथ एकत्व और बाकी सब गौण है और बस इसका परिणाम है; साधक के लिए वह मात्र अपने लिए या अहंकार के लिए प्रगति, अनुभूति आदि की खोज नहीं कर रहा। यह मनोवृत्ति रखना उचित है कि अन्ततः यह सच है कि यदि साधक स्व-केन्द्रित हो, अहंकारपूर्ण और निराशापूर्ण हो तो ध्यान, अन्तर्दृष्टि और बाकी सब कुछ का योग में दुरुपयोग होगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि ध्यान, अन्तर्दृष्टि इत्यादि किसी काम के नहीं हैं और साधना में उनकी उपेक्षा करनी चाहिये।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १३७-३८

यह निश्चित है कि व्यक्ति का अपना प्रयास आवश्यक है, यद्यपि कोई भी केवल अपने ही प्रयास से साधना नहीं कर सकता। माताजी की 'शक्ति' आवश्यक होती है, लेकिन साधक को उसके प्रति खुले रहना होगा, उस सबको निकाल बाहर करना होगा जो उस 'शक्ति' का विरोध करे, अपनी समग्र सच्चाई, अभीप्सा, संकल्प-शक्ति को साधना में लगा देना होगा। केवल तभी जब सब कुछ उद्घाटित हो और समर्पण सम्पूर्ण हो, 'भागवत शक्ति' इतने पूर्ण रूप में व्यक्ति की साधना को अपना लेती है कि फिर व्यक्तिगत प्रयास की आवश्यकता नहीं रह जाती। लेकिन यह आरम्भिक स्तर पर नहीं हो सकता—व्यक्ति को स्वयं को तब तक निरन्तर उद्घाटित करते रहना होगा, स्वयं को समर्पित, उत्सर्गित करते रहना होगा जब तक कि बाद की यह अवस्था नहीं आ जाती।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २२०

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास

साधक से जिस प्रयास की मांग की जाती है वह है अभीप्सा, त्याग और आत्म-समर्पण। अगर ये तीनों चीजें की जायें तो फिर बाकी चीजें

श्रीमां की कृपा से और तुम्हारे अन्दर उनकी शक्ति की क्रिया के कारण अपने-आप ही आयेंगी। परन्तु इन तीनों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है आत्म-समर्पण, और उसका प्रथम आवश्यक स्वरूप है कठिनाई के समय विश्वास, भरोसा और धैर्य। यह कोई नियम नहीं है कि विश्वास और भरोसा केवल तभी रह सकते हैं जब कि अभीप्सा भी हो। बल्कि इसके विपरीत, जब तामसिकता के दबाव के कारण अभीप्सा नहीं होती तब भी विश्वास, भरोसा और धैर्य विद्यमान रह सकते हैं। यदि अभीप्सा के प्रसुप्त रहने पर विश्वास और धैर्य साथ छोड़ दें तो उसका मतलब यह होगा कि साधक एकमात्र अपने निजी प्रयास पर ही निर्भर करता है—उसका अर्थ होगा—"ओह, मेरी अभीप्सा असफल हो गयी है, इसलिए अब मेरे लिए कोई आशा नहीं। मेरी अभीप्सा असफल हो रही है, इसलिए भला माताजी भी क्या कर सकती हैं?" पर, इसके विपरीत, साधक का भाव यह होना चाहिये—"कोई बात नहीं, मेरी अभीप्सा फिर से वापस आयेगी। इस बीच, मैं जानता हूं कि जब मैं श्रीमां को अनुभव नहीं करता तब भी वे मेरे साथ हैं; वे मुझे अन्धकारमयी घड़ियों से भी पार करायेंगी।" यही पूर्णतः यथार्थ भाव है जिसे तुम्हें अवश्य बनाये रखना चाहिये। जिनमें यह भाव होता है, अवसाद उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता; अगर अवसाद आता भी है तो उसे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वापस लौट जाना पड़ता है। यह चीज तामसिक आत्म-समर्पण नहीं है। तामसिक समर्पण तो उसे कहते हैं जब मनुष्य कहता है कि "मैं कुछ भी नहीं करूंगा; श्रीमां सब कुछ कर दें। अभीप्सा, त्याग और आत्म-समर्पण भी आवश्यक नहीं हैं। माताजी ही मेरे अन्दर यह सब कर दें।" इन दोनों भावों में बहुत बड़ा अन्तर है।

एक भाव तो है उस पीछे हटने वाले का जो कुछ भी नहीं करना चाहता; और दूसरा है उस साधक का जो अपनी शक्ति-भर प्रयास करता है, पर जब वह कुछ समय के लिए अकर्मण्यता में जा गिरता है और चीजें विपरीत हो जाती हैं तब भी वह सब चीजों के पीछे विद्यमान श्रीमां की शक्ति और उपस्थिति में अपना विश्वास बनाये रखता है और उस विश्वास के द्वारा विरोधी शक्ति को चकमे में डाल देता है और साधना की क्रिया को फिर वापस ले आता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १३९-४०

श्रीमां की 'शक्ति'

श्रीमां की शक्ति दिव्य शक्ति है

आप प्रायः ही 'माताजी की शक्ति' की बात करते हैं। वह क्या है?

वह है 'भागवत शक्ति' जो अज्ञान को दूर करने और मानव प्रकृति को दिव्य प्रकृति में परिवर्तित करने के लिए कार्य करती है।

मैं यह क्यों अनुभव करता हूं कि यह काम, वह काम मैं ही कर रहा हूं? क्योंकि क्या यह सच नहीं है कि श्रीमां की शक्ति ही हमारे अन्दर सब कुछ करती है?

जब मैं माताजी की शक्ति की बात करता हूं तब मैं प्रकृति की शक्ति की बात नहीं करता जो अज्ञान तले सभी चीजों को क्रियान्वित करती रहती है, बल्कि भगवान् की 'उच्चतर शक्ति' की बात करता हूं जो प्रकृति का रूपान्तर करने के लिए ऊपर से अवतरित होती है।

दोषों का उपचार

यह अशान्त मन और चञ्चल प्राण विशेष रूप से तुम्हारे अन्दर नहीं हैं; ये तो मानव स्वभाव की चीजें हैं जिनके साथ हर एक साधक साधना शुरू करता है। तुम्हें जो ग्रहण करना है वह है—माताजी की शक्ति और कृपा जो अपने साथ मुक्ति, शान्ति और आनन्द लिये आती है और जिनके बारे में तुमने कहा है कि कभी-कभी इनकी अनुभूति तुम्हें हुई भी है। शुरू-शुरू में ये चीजें कुछ ही समय के लिए आती हैं, लेकिन जैसे-जैसे तुम दृढ़ता के साथ अपने पथ पर बढ़ते चलते हो, वैसे-वैसे ये बारम्बार आती और अधिक समय के लिए बनी रहती हैं जब तक कि ये स्थायी अनुभूति नहीं बन जातीं। यही चीज तुम्हारे उन दोषों को सुधार देगी जिनकी तुम शिकायत कर रहे हो।

जब कोई साधक उचित मनोवृत्ति के साथ काम करता है और उच्चतर शक्ति सीधी उस पर क्रिया करती है, तब वह शक्ति उसके दोषों और अपूर्णताओं को दूर करने के लिए किस तरह काम करती है?

वह क्रमशः या तेजी से आन्तरिक चेतना को जाग्रत् कर उस पर इस तरह क्रिया करती है—अहंकार की सेवा के सिद्धान्त के स्थान पर भागवत सेवा के सिद्धान्त को ले आती है, साधक को उसकी अपनी क्रियाओं का अवलोकन कराती है ताकि वह स्वयं अपने दोषों को देखे और उन्हें सुधारने के लिए कमर कस ले, उसकी और माताजी की चेतना के बीच एक सम्बन्ध जोड़ देती है, उसकी प्रकृति को इस तरह तैयार करती है कि वह माताजी की चेतना और शक्ति को अधिकाधिक ग्रहण कर सके, उसे ऐसी अनुभूतियां प्रदान करती है जिनसे वह योग की महान् अनुभूतियां पाने के लिए तैयार हो जाये, उसकी चैत्य सत्ता को विकसित करती है और माताजी 'वैश्व सत्ता' हैं इसकी अनुभूति पाने के लिए उसको उद्घाटित करती है; इत्यादि-इत्यादि। स्वाभाविक है कि वह भिन्न व्यक्तियों में भिन्न प्रकार से क्रिया करती है।

माताजी की शक्ति को ग्रहण करना

माताजी की शक्ति को जब कोई ग्रहण करता है तब उसके लिए सर्वोत्तम तरीका यह है कि वह तब तक शान्त-स्थिर बना रहे जब तक वह शक्ति उसके अन्दर आत्मसात् न हो जाये; उसके बाद वह स्थिर रहती है, बाहरी क्रियाओं या मिलने-जुलने से खो नहीं जाती।

> *मैंने ध्यान करने की कोशिश की, लेकिन अन्ततः मुझे प्रयास छोड़ ही देना पड़ा क्योंकि मन सहयोग नहीं दे रहा था।*

जब तुम ध्यान न कर पाओ तो शान्त-स्थिर रहो और माताजी की 'शान्ति' और 'शक्ति' को अपने अन्दर बुलाओ।

तुम्हें अपने अन्दर विश्वास रखना चाहिये और हमेशा विश्वस्त और प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। अगर तुम उदासी में डूब जाओ तो उस अवसाद के बादल को हटाने के लिए माताजी की 'शक्ति' को पुकारो। अगर तुम बीमार पड़ जाओ तो नीरोग होने के लिए माताजी की 'शक्ति' का आवाहन करो। काम करते समय माताजी की 'शक्ति' को बुलाओ कि वह तुम्हें सहारा दे और तुम्हारे द्वारा कार्य करे।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १९३, १९५, १९८, २१४, २१५, २१७

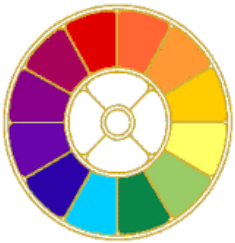

वह यहां के जन्म और कठोर श्रम तथा नियति के ऊपर आसीन है,
ये युग अपने मन्द गतिचक्रों में उसी की पुकार पर घूमते हैं;
केवल उसी के हाथ हैं जो त्रिकाल के शेषनाग की धुरी बदल सकते हैं।
उसी के रहस्य को यह अज्ञान की अन्धरात्रि छिपाये रहती है;
हमारी आत्मचेतना की कीमियागर ऊर्जा भी उसी की है;
वह स्वर्ण-सेतु है, अलौकिक दिव्याग्नि है।
परम-अज्ञेय का दीप्तिमान हृदय भी वह है,
प्रभु की अथाह गहनताओं में नीरवता की एक शक्ति है;
वह आदि-शक्ति है, सृष्टि हित अनिवार्य आदि शब्दब्रह्म है,
हमारे कठिन-दुरूह आरोहण को आकर्षित करती चुम्बक है,
वह अदिति माता है जिससे हमारे आदित्य प्रज्वलित होते हैं,
वह दिव्य ज्योति है जो अगम्य परात्परों से नीचे झुक आती है,
वह आत्म-प्रसन्नता है जो असम्भव उच्चता से संकेत कर बुलाती है,
वह समष्टि की परमा शक्ति है जो अभी तक यहां कभी अवतरित नहीं हुई है।
मौन भाव से सकल विश्व-प्रकृति केवल उसी को टेरती है
कि उसकी चरणधूलि पा जीवन-क्रीड़ा की कसक थम जाये
और मानव की धूमिल आत्मा पर लगे ताले सब टूट जायें
और उसकी ज्वाला वस्तुओं के बन्द अन्तरों में प्रज्वलित हो उठे।

'सावित्री', पृ. ३१४ —श्रीअरविन्द

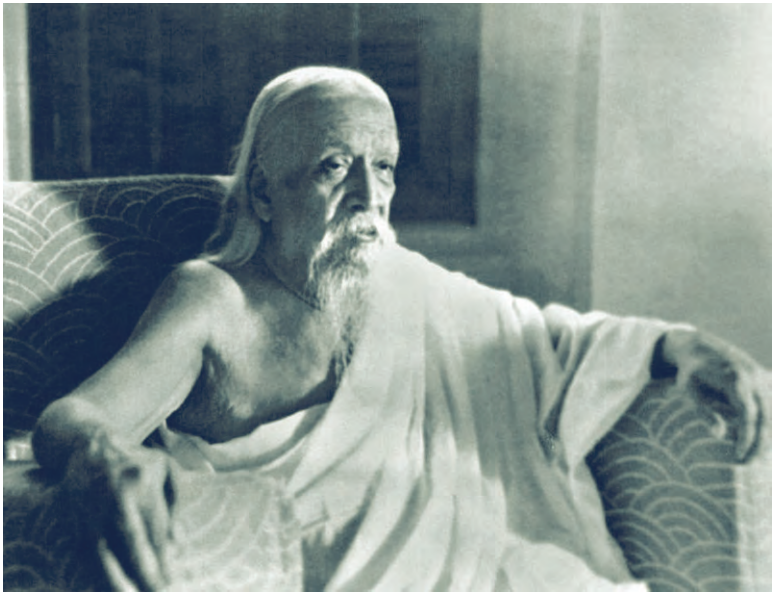

... संसार का जीवन अपने स्वभाव में अशान्ति का क्षेत्र है—उचित तरीके से उस पर चलने के लिए व्यक्ति को अपना जीवन और कर्म भगवान् को समर्पित करने चाहियें और अपने अन्दर भगवान् की शान्ति को पाने की प्रार्थना करनी चाहिये। जब मन शान्त हो जाता है तब व्यक्ति अनुभव करता है कि दिव्य मां उसके जीवन को सहारा दे रही हैं और वह प्रत्येक चीज को उनके हाथों में छोड़ सकता है।

*

नहीं, केवल आश्रम में रहना पर्याप्त नहीं है। व्यक्ति को माताजी के प्रति खुलना होगा और उस धूल को अपने ऊपर से झाड़ फेंकना होगा जिसके साथ हम जगत् में खेल रहे थे।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४३, १५६

योगी, संन्यासी, तपस्वी बनना यहां का उद्देश्य नहीं है। हमारा उद्देश्य है रूपान्तर, और तुमसे अनन्तगुना बड़ी शक्ति के द्वारा ही यह रूपान्तर सम्पन्न किया जा सकता है; यह केवल तभी किया जा सकता है जब तुम दिव्य मां के हाथों में सचमुच एक बालक बन कर रहो।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १४३

*

सावित्री ने उनके हाथों को थाम लिया, वे ही उनके पथों को चुनती हैं :
वे ही उन्हें अज्ञात महान् वस्तुओं की ओर सञ्चालित करती हैं,
लोगों को श्रद्धा और 'उनका' बन जाने का हर्षमय अनुभव आकर्षित करता;
वे 'उनके' अन्तर में बसते, 'उनके' नयनों से इस संसार को देखते।
—'सावित्री', पृ. ३६४

श्रीमां की ओर खुलो

श्रीमां की ओर खुले रहो

मैं ध्यान ही नहीं कर पाता, क्योंकि जब मैं बैठता हूं तो कई विचार मेरे अन्दर घुस आते हैं। मुझे कौन-सा पथ अपनाना चाहिये, ताकि मैं प्रगति कर सकूं और श्रीमां के लिए आसान बना दूं कि वे मेरे अन्दर अपना कार्य कर सकें?

अगर तुम ध्यान न कर पाओ तो प्रार्थना करो। जो कुछ तुम करो उसे माताजी को समर्पित कर दो और उनसे प्रार्थना करो कि वे तुम्हारी क्रियाओं और तुम्हारे स्वभाव को अपने नियन्त्रण में ले लें।

माताजी से प्रेम करो, उनकी आराधना करो। आवश्यकता है पूरी तरह उद्घाटित होने की ताकि तुम माताजी के प्रति सचेतन बन सको। प्रेम और आराधना उद्घाटन ले आयेंगे। लेकिन, अगर समय लगे तो उदासी में न डूब जाओ, हताशा और विद्रोह को पास न फटकने दो—क्योंकि ये चीजें उद्घाटन के रास्ते आड़े आती हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १५९

सारी बात है स्वयं को माताजी के प्रति उद्घाटित रखने की। निर्णायक अनुभूतियों को पाने के लिए स्वभाव को तैयार करने में हमेशा समय लगता है और हताशा या तात्कालिक परिणाम पाने के लिए अधीरता के बिना एक सतत आत्मोद्घाटन होता ही रहना चाहिये।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १५९

श्रीमां के चित्रों में उनकी उपस्थिति

श्रीमां की फ़ोटो के बारे में हुई तुम्हारी अनुभूति बहुत ही अच्छी है, यह सच्चा अनुभव है। जो कोई माताजी को भक्ति-भाव से निहारता है उसे माताजी की फ़ोटो के द्वारा उनकी उपस्थिति का अनुभव हो सकता है। वहां उनकी सच्ची उपस्थिति थी, उनकी सूक्ष्म-भौतिक उपस्थिति, और जो कुछ तुमने अनुभव किया वह सच था। यह इस बात को दर्शाता है कि

तुम्हारा भौतिक मन सच्ची चेतना की ओर खुल रहा है। यह एकदम निश्चित है कि यह चीज विकसित होगी और पुरानी गतियों के अवशेष अवश्य ही विलीन हो जायेंगे।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८४

खुलने का तरीका

सच्चा उद्घाटन क्या है?

यह माताजी की उपस्थिति और उनकी शक्तियों के प्रति ग्रहणशीलता है।

उद्घाटन के लिए उचित और ठीक तरीका क्या है?

अभीप्सा, अचञ्चलता, ग्रहण करने के लिए स्वयं का विस्तार और जो कुछ तुम्हें भगवान् की ओर से बन्द करने की कोशिश करे उस सबका बहिष्कार।

श्रीमां के प्रति सच्चे उद्घाटन के चिह्न क्या हैं?

यह तो अपने-आपमें एकदम स्पष्ट है—जब तुम भागवत शान्ति, समानता, विस्तार, ज्योति, आनन्द, ज्ञान, शक्ति का अनुभव करो, जब तुम माताजी की निकटता या उनकी उपस्थिति या उनकी शक्ति की क्रिया के प्रति सचेत हो जाओ। अगर इनमें से किसी भी चीज का तुम अनुभव करो तो वह उद्घाटन है—इन चीजों का जितना अधिक तुम अनुभव करोगे उतना अधिक उद्घाटन पूर्ण से पूर्णतर होता जायेगा।

सत्ता की सभी गांठों को खोलने का क्या तरीका है?

अभीप्सा के द्वारा, 'भागवत शक्ति' को अपने अन्दर क्रिया करने देने के समर्थन के द्वारा; उस 'शक्ति' के अवतरण तथा कर्म द्वारा यह किया जा सकता है।

"उद्घाटन" का अर्थ क्या है? क्या इसका अर्थ "श्रीमां से कुछ भी छिपा कर न रखना" नहीं है?

यह उद्‌घाटन की ओर बढ़ाया हुआ पहला कदम है।

व्यक्ति "उद्‌घाटित" कैसे होता है?

शान्त तथा अचञ्चल मन में श्रद्धा और समर्पण के द्वारा।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १५०-५१

माताजी के प्रति पूरी तरह, समग्र रूप से उद्‌घाटित होने के लिए तुम्हें अन्दर और बाहर दोनों तरह से खुला रहना चाहिये। तुम्हें पूर्णतः निष्कपट होकर उनसे सब कुछ कह देना चाहिये—तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी है उसे सीधे-सच्चे रूप में उनके सम्मुख प्रकट करने से कभी न कतराओ। यह तुम्हें पूर्ण रूप से खुलने में और साथ ही माताजी तुम्हारी पूरी-पूरी सहायता कर सकें—इन दोनों बातों को सम्भव बना देगा।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १५५

हमेशा श्रीमां की ओर खुलो

अगर कोई विरोधी शक्ति आये तो हमें उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये और न उसके सुझावों का स्वागत ही करना चाहिये, बल्कि हमें श्रीमां की ओर मुड़ जाना चाहिये और किसी भी हालत में उनसे विमुख नहीं होना चाहिये। चाहे कोई स्वयं को खोल सके या नहीं, उसे एकनिष्ठ और विश्वासपात्र जरूर बने रहना चाहिये। सच्चाई और विश्वासपात्रता ऐसे गुण नहीं हैं जिनके लिए मनुष्य को योग ही करना पड़े; ये बहुत सीधी-सादी चीजें हैं जिन्हें सत्य की अभीप्सा करने वाले किसी भी पुरुष या स्त्री को प्राप्त करने में समर्थ होना चाहिये।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १६०-६१

श्रीमां को पुकारना

भारत में, जैसे ही गुरु किसी शिष्य को अपना लिया करते थे वे उसे मन्त्र देकर उसके सहारे साधना में आगे बढ़ने को कहते थे। हमारे यहां श्रीमां के नाम-जप के अलावा और कोई मन्त्र नहीं है। लेकिन सामान्य तौर पर हम साधक को कर्म करने के लिए कहते हैं, उन्हें कार्य देते हैं,

उनसे अभीप्सा करने को कहते हैं, अवाञ्छित चीजों का त्याग करने को और श्रीमां के प्रति स्वयं को खोलने के लिए कहते हैं।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १३९

नींद में तुम्हें यह अनुभव हुआ कि तुम प्राण-जगत् में जाकर वहां एक ऐसी विरोधी प्राणिक शक्ति से मिल रहे हो जो तुम्हें धमका रही, तुम पर प्रहार करना चाह रही है, लेकिन कर नहीं पा रही क्योंकि तुम माताजी के नाम की टेर लगा रहे हो। प्राणिक जगत् के इन रास्तों से गुजरने के लिए दो चीजों को प्राप्त करना ही चाहिये—पहली, माताजी की सुरक्षा के लिए तुरन्त आवाहन करना और दूसरी, समस्त भय को निकाल फेंकना। जो लोग भयभीत नहीं होते उन पर ये सत्ताएं या शक्तियां कुछ नहीं कर सकतीं—उनका सामना होने या उनके साथ संघर्ष होने पर माताजी के नाम का सतत जाप सुनिश्चित सुरक्षा है। हो सकता है कि व्यक्ति के अन्दर कुछ भय हो, लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं।
CWSA खण्ड ३२, पृ. २८९

हमेशा यह विचार बनाये रखो

ये चीजें जो तुम्हें डराने आती हैं वे उन क्षुद्र प्राणिक शक्तियों द्वारा फेंके गये मात्र ऐसे चिह्न होते हैं जो तुम्हें भयभीत कर साधना में आगे बढ़ने से रोकती हैं। ये सचमुच तुम्हें किसी तरह का कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकतीं, बस तुम्हें समस्त भय को निकाल बाहर करना होगा। जब कभी ये चीजें सिर उठायें तो हमेशा इस भाव को बनाये रखो : "मेरे साथ माताजी की सुरक्षा है, मेरे साथ कुछ बुरा नहीं हो सकता", क्योंकि जब चैत्य उद्घाटित होता है और व्यक्ति माताजी पर अपनी श्रद्धा को डिगने नहीं देता तो बस यही चीज सभी विरोधी प्रहारों को विलीन कर देने के लिए पर्याप्त होती है। कई साधकों ने यह सीख लिया है कि जब उन्हें दहलाने वाले सपने आते हैं तो वे सपने में ही माताजी के नाम की टेर लगाते हैं, तब जो चीज उन्हें हौआ बन कर डरा रही होती है वह एकदम कमजोर पड़ कर खतम हो जाती है। इसलिए तुम्हें इनसे डरना बिलकुल नहीं चाहिये और इनके प्रभावों को तिरस्कार के साथ निकाल दूर फेंकना

चाहिये। अगर डराने वाली कोई चीज बनी रहे तो माताजी की सुरक्षा के लिए आवाहन करो।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ३०६-०७

श्रीमां की 'कृपा' में विश्वास

योग का मूल उद्देश्य है, हर पग पर भगवान् में श्रद्धा बनाये रखना, अपने विचार को निरन्तर भगवान् की ओर मोड़ना और तब तक अपने-आपको निरन्तर समर्पित करते रहना जब तक कि सत्ता उद्घाटित न हो जाये और आधार में माताजी की शक्ति की क्रिया का अनुभव न होने लगे।

व्यक्ति जितना अधिक विकसित होता है, उतना अधिक भागवत कृपा के लिए कार्य करना सम्भव होता है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १६६

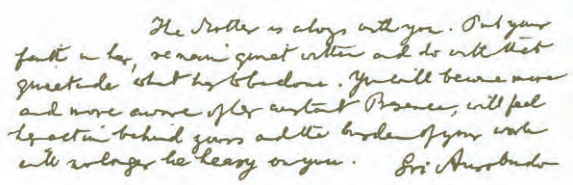
The Mother is always with you. Put your faith in her, remain quiet within and do with that quietude what has to be done. You will become more and more aware of her constant Presence, will feel her action behind yours and the burden of your work will perhaps be heavy on you. Sri Aurobindo

माताजी हमेशा तुम्हारे साथ होती हैं। अपनी आस्था उन पर टिकाये रखो, अन्दर से शान्त-अचञ्चल रहो और जो कुछ करना हो उस अचञ्चलता के साथ करो। तुम उनकी सतत 'उपस्थिति' के बारे में अधिकाधिक सचेतन हो जाओगे, अपनी प्रत्येक क्रिया के पीछे उनकी क्रिया का अनुभव करोगे और तुम्हारे कार्य का भार फिर तुम पर हावी न होगा।
CWSA खण्ड ३२, पृ. २८

Peace, the Light and
the Joy of the Lord
to be always with you

Blessings

हमेशा ऐसे जियो मानों तुम 'परम प्रभु' तथा 'भगवती मां' की आंखों के ठीक नीचे हो। ऐसी कोई क्रिया न करो, ऐसी कोई चीज सोचने या अनुभव करने की चेष्टा मत करो जो 'भागवत उपस्थिति' के सम्मुख करने-योग्य न हो।

चैत्य-केन्द्र का सीधा उद्‌घाटन केवल तभी आसान होता है जब अहं-केन्द्रितता बहुत घट जाये और साथ ही जब माताजी के लिए प्रबल भक्ति भी हो। आध्यात्मिक विनम्रता और आज्ञाकारिता तथा निर्भरता भी अनिवार्य हैं।

सतत स्मरण के द्वारा ही सत्ता पूर्ण उद्‌घाटन के लिए तैयार होती है। हृदय के उद्‌घाटन से माताजी की उपस्थिति का अनुभव होना शुरू होता है और ऊपर की उनकी 'शक्ति' के प्रति उद्‌घाटित होने पर उच्चतर चेतना शरीर में उतर आती है और व्यक्ति की समस्त प्रकृति को बदलने के लिए वहां कार्य करती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १७२, १६३, १६७

श्रीमां के लिए चैत्य भाव

चैत्य-प्राकट्य के चिह्न

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमां को देखने-भर से सन्तोष और आनन्द का अनुभव करती है?

यह चैत्य भावना है।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमां के स्मरण मात्र से सन्तोष और आनन्द का अनुभव करती है?

चैत्य।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमां के विरोध में कुछ सुनने से हृदय में घाव पैदा करती है?

चैत्य।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमां के भौतिक रूप से निकट न होने पर भी हमारे हृदय में श्रीमां की उपस्थिति का अनुभव कराती है?

चैत्य।

मैं यह कैसे समझ सकूंगा कि मैं चैत्य प्रेम से भरपूर हूं?

अहंकार के लोप द्वारा, भक्ति द्वारा, भगवान् के प्रति आज्ञाकारिता और समर्पण द्वारा।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६६-६७

मैंने बहुधा देखा है कि जब भगवान् के लिए एक आन्तरिक प्रेम उमड़ता है तो आंसुओं की धारा बह निकलती है।

ये भक्ति तथा इसी तरह के अन्य भावों के चैत्य आंसू होते हैं।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६८

प्रभु के लिए चैत्य प्रेम

जब सब कुछ अचञ्चल और शान्त होता है, मैं अपने अन्दर एक गहराई का अनुभव करता हूं; मेरे अन्दर से सभी के लिए समान रूप से और निरन्तर एक मधुर भावना उमड़ती रहती है। वह सतत रूप से माताजी के पास तक जाती है। भगवान् के साथ एक मधुर सम्बन्ध का भाव होता है जो सारी सत्ता को मृदु बना देता है—वह भाव शान्त, अचञ्चल, मधुर शान्ति और सन्तुष्टि से भरपूर होता है।

यह चैत्य प्रेम है।

भगवान् को पाने की कामना करना या भगवान् के लिए भक्ति ही ऐसी एकमात्र कामना है जो और किसी भी कामना के ऊपर होती है—वास्तव में, अपने मूल में वह कामना नहीं, बल्कि होती है एक अभीप्सा, अन्तरात्मा की आवश्यकता, मनुष्य की अन्तरतम सत्ता के अस्तित्व की श्वास। और वैसे इसकी गिनती कामनाओं में नहीं हो सकती।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६७, ४७६

अपनी गतियों से शंका, उदासी और उन सभी चीजों को निकाल झाड़ फेंको जो तुम्हारे सच्चे और उच्चतर स्वभाव के हिस्से नहीं हैं। असमर्थता, अयोग्यता और विरोधी शक्ति के इन सभी अविवेकी सुझावों का त्याग कर दो। अपनी अन्तरात्मा के प्रकाश के प्रति निष्ठावान् बने रहो, भले ही वह बादलों के पीछे क्यों न छिपी हो। चाहे तुम मेरी सहायता और श्रीमां की इच्छा का अनुभव न भी कर पाओ, लेकिन प्रति क्षण वे तुम्हारी सहायता के लिए परदे के पीछे सतत उपस्थित रहेंगी। तुम्हारे लिए और सबके लिए एकमात्र आवश्यकता है, भौतिक चेतना की अन्धकारमयी शक्तियों के धुंधलके में भी अपनी अन्तरात्मा के प्रति कट्टर निष्ठावान् और 'भागवत पुकार' के प्रति सतत जागरूक रहना।

निष्ठावान् रहो और विजय तुम्हारे हाथों होगी।
CWSA खण्ड ३१, पृ. ७८७

समर्पण

इस योग का अभ्यास करने वालों से समर्पण की मांग की जाती है

अगर तुम आत्म-समर्पण न करो तो फिर माताजी की ओर खुले रहने का कोई विशेष आध्यात्मिक अर्थ नहीं है। आत्मदान या समर्पण की मांग उन लोगों से की जाती है जो इस योग का अभ्यास करते हैं, क्योंकि सत्ता के विकसनशील समर्पण के बिना लक्ष्य के कहीं समीप पहुंचना तक एकदम असम्भव होता है। उनकी ओर खुले रहने का अर्थ है, अपने अन्दर कार्य करने के लिए उनकी शक्ति का आवाहन करना, और अगर तुम उस शक्ति के प्रति समर्पण नहीं करते तो इसका अर्थ है कि अपने अन्दर उस शक्ति को एकदम कार्य न करने देना अथवा केवल इस शर्त पर कार्य करने देना कि वह उसी तरह कार्य करे जिस तरह कि तुम चाहते हो, अपने निजी तरीके से, जो कि 'दिव्य सत्य' का तरीका है, कार्य न करे। इस तरह का सुझाव साधारणतया किसी विरोधी शक्ति से आता है अथवा मन या प्राण के किसी अहंकारपूर्ण अंश से आता है जो भागवत कृपा या शक्ति को चाहता तो है पर केवल इसलिए कि वह अपने किसी निजी उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करे और यह अंश भागवत उद्देश्य के लिए जीवन यापन करने का इच्छुक नहीं होता—जो कुछ वह ले सके वह सब भगवान् से ले लेने के लिए तो वह उत्सुक रहता है, पर स्वयं अपने-आपको भगवान् के हाथों में दे देने के लिए नहीं। इसके विपरीत, अन्तरात्मा भगवान् की ओर मुड़ती है और आत्म-समर्पण करने के लिए केवल इच्छुक ही नहीं होती बल्कि बहुत उत्सुक रहती है और उससे उसे प्रसन्नता होती है।

श्रीमां के प्रति समर्पण एक अनिवार्यता है

अगर तुम अपनी साधना में प्रगति करना चाहते हो तो यह आवश्यक है कि जिस उत्सर्ग और समर्पण की बात तुम करते हो उसे सरल, सच्चा और पूर्ण बनाओ। यह तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि तुम अपनी वासनाओं को अपनी आध्यात्मिक अभीप्सा के साथ मिलाते हो। यह तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि तुम परिवार, सन्तान या अन्य किसी चीज या मनुष्य के प्रति अपनी प्राणिक आसक्ति का पोषण करते हो। अगर तुम्हें यह योग करना है तो तुम्हें बस एक ही कामना और

अभीप्सा रखनी चाहिये, आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने और उसे अपने सभी विचारों, अनुभवों, क्रियाओं और प्रकृति के अन्दर अभिव्यक्त करने की कामना और अभीप्सा रखनी चाहिये। तुम्हें किसी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध बनाने के लिए लालायित नहीं होना चाहिये। दूसरों के साथ साधक के सम्बन्ध उसके अन्दर से, जब वह सत्य चेतना प्राप्त कर लेता और ज्योति में निवास करता है, तब उत्पन्न होने चाहियें। वे सम्बन्ध उसके अन्दर दिव्य माता की शक्ति और इच्छा के द्वारा, दिव्य जीवन और दिव्य कर्म के लिए आवश्यक अतिमानसिक सत्य के अनुसार, निश्चित होंगे; वे कभी उसके मन और उसकी प्राणिक वासनाओं के द्वारा निश्चित नहीं होने चाहियें। इस बात को तुम्हें अवश्य याद रखना होगा।

भगवान् तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं, वे तुम्हें हांकते नहीं। प्रत्येक मानसिक सत्ता को, जिसे मानव नाम से पुकारा जाता है, आन्तरिक स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह भगवान् के पथ-प्रदर्शन को स्वीकारे या न स्वीकारे, अन्यथा कैसे कोई भी सच्चा आध्यात्मिक विकास सम्भव हो सकता है?

दिव्य मां की ओर ताको

समर्पण का अर्थ है, हमेशा दिव्य मां को अपने हृदय में बनाये रखो —सभी कामनाओं-लालसाओं को त्याग कर केवल उन्हीं का कार्य करो, अपने विचारों और पसन्द-नापसन्दों पर जोर न देकर केवल उन्हीं के 'सत्य' की मांग करो, केवल उन्हीं की आज्ञा का पालन करो, उन्हीं के सुझाये पथ पर चलो, स्वयं को उद्‌घाटित कर उनकी शक्ति, उनकी गतियों के प्रति सचेतन बनो तथा उनकी उन गतियों को अपने अन्दर क्रिया करने दो ताकि वे तुम्हारी प्रकृति को दिव्य प्रकृति में परिवर्तित कर दें।

समर्पण की कठिनाई

मैं कह चुका हूं कि मानव प्राण किसी दूसरे के द्वारा नियन्त्रित या शासित होना पसन्द नहीं करता और मैंने कहा था कि यह भी एक कारण है कि साधक माताजी के प्रति समर्पण करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। क्योंकि प्राण अपने ही विचारों, आवेगों, कामनाओं और अभिरुचियों को दृढ़तापूर्वक स्थापित करना चाहता है और जो कुछ उसे पसन्द है वही

करना चाहता है, वह यह अनुभव नहीं करना चाहता कि उसके अपने स्वभाव की शक्ति से भिन्न कोई शक्ति उसे राह दिखा रही या चला रही है; किन्तु माताजी के प्रति समर्पण का अर्थ यह है कि उसे ये सब व्यक्तिगत वस्तुएं छोड़ देनी होंगी और माताजी की शक्ति को इसके लिए अवसर देना होगा कि वह उच्चतर सत्य के तरीकों से, जो उसके अपने तरीके नहीं हैं, उसे मार्ग दिखाये या चलाये : इसीलिए वह प्रतिरोध करता है, सत्य के प्रकाश और माताजी की शक्ति से शासित नहीं होना चाहता, अपनी स्वतन्त्रता के लिए आग्रह और समर्पण करने से इन्कार करता है।

तुम्हें जो करना चाहिये

जो मैं चाहता था कि तुम करो वह है १. अहंकार से पूरी तरह मुक्त होकर, सच्चे-सीधे-निष्कपट रूप में पूर्णतः माताजी के हाथों में अपने-आपको सौंप दो। २. अपने स्वभाव के अभ्यासगत दोषों के प्रति सचेतन होकर उन्हें अपने अन्दर से निकाल बाहर करो। ३. अपने अन्दर के अन्धकारमय भागों को प्रकाश की ओर उद्घाटित कर उनकी गति को बदल दो। लेकिन यहां एक मानसिक अलवेट है—बिना कुछ बचाये, अपने-आपको पूरी तरह सौंप दो—वाक्य का अर्थ यह है कि स्वयं को उस 'दिव्य शक्ति' के प्रति समर्पित करो, यह नहीं कि अपनी प्राणिक प्रकृति की किसी गलत गति को भगवान् मान बैठो, तब कोई विरोधी शक्ति तुम पर हावी होकर तुम्हें पूरी तरह से पथभ्रष्ट कर सकती है।

यही कारण है कि मैंने बार-बार कहा है कि समर्पण का अर्थ हाथ-पर-हाथ धरे बैठना नहीं है। तुम्हें सचेतन होकर दिव्य शक्ति के प्रति उत्सर्ग करना होगा और साथ-ही-साथ अपने अन्दर से निम्न स्वभाव की सभी गतियों का उन्मूलन करते रहना होगा। माताजी के प्रति समर्पण का अर्थ है कि तुम इन दूसरी शक्तियों के अधीन होने से सतत इन्कार करते चलो। क्योंकि अगर तुम यह सोचने लगो कि सभी गतियां अन्ततः भागवत गतियां हैं तो यह तो इस योग के उद्देश्य का खण्डन करना होगा; इसलिए विवेक और त्याग, दोनों ही इस यात्रा के पाथेय और सहारे हैं तथा उत्सर्ग और समर्पण में साधक के सहायक हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४०-४२, १४४-४५, १४६, १४७-४८, १४८-४९

इस योग में इसके अतिरिक्त और कोई पद्धति नहीं है कि साधक अपनी चेतना को एकाग्र करे, विशेषकर हृदय में, और माताजी की उपस्थिति और शक्ति का आवाहन करे कि वे उसकी सत्ता को अपने हाथ में ले लें और अपनी शक्ति की क्रियाओं के द्वारा उसकी चेतना को रूपान्तरित करें। कोई चाहे तो अपने मस्तक में या भृकुटि के बीच भी चेतना को एकाग्र कर सकता है, परन्तु अधिकतर लोगों के लिए इस तरह आत्मोद्घाटन करना अत्यन्त कठिन होता है। जब मन शान्त-स्थिर हो जाता है और एकाग्रता दृढ़ तथा अभीप्सा तीव्र हो जाती है तब अनुभूति का होना आरम्भ हो जाता है। श्रद्धा जितनी अधिक होती है उतनी ही शीघ्रता से परिणाम भी प्राप्त होने की सम्भावना हो जाती है। बाकी चीजों के लिए साधक को केवल अपने ही प्रयास पर नहीं निर्भर करना चाहिये, बल्कि भगवान् के साथ सम्पर्क स्थापित करने तथा माताजी की 'शक्ति' और 'उपस्थिति' को ग्रहण करने में सफल होना चाहिये।

CWSA खण्ड २९, पृ. १०७

"कितनी दूर मैं आ गया हूं, और कितना रास्ता मुझे तय करना है?" — ऐसे प्रश्न बहुत उपयोगी नहीं होते। श्रीमां को कर्णधार बना कर प्रवाह के साथ बहो। वे तुम्हें तुम्हारे निर्धारित बन्दरगाह पर पहुंचा देंगी।

*

एकमात्र श्रीमां ही तुम्हारा लक्ष्य हैं। वे अपने अन्दर सब कुछ समाये हुए हैं। उनका पास होना अपने पास सब कुछ का होना है। अगर तुम उनकी 'चेतना' में रहो तो बाकी सभी गुण स्वतः ही खिल उठते हैं।

—श्रीअरविन्द की 'बांग्ला रचनाओं' से

जब मैं योग के विषय में कुछ भी नहीं जानता, यह भी नहीं जानता कि क्या करना चाहिये, तब मैं योग कैसे कर सकता हूं भला?

योग करने के दो तरीके हैं—एक है, ज्ञान द्वारा, अपने ही प्रयास द्वारा करना, दूसरा है, माताजी पर श्रद्धा रखना। दूसरे तरीके में व्यक्ति को अपना मन, हृदय और बाकी सब कुछ माताजी को समर्पित कर देना होता है ताकि उनकी 'शक्ति' उस पर क्रिया कर सके। सभी कठिनाइयों में उन्हीं को पुकारो, श्रद्धा और भक्ति को बनाये रखो। शुरुआत में इसमें समय लगता है, चेतना को इस तरीके से तैयार करने में बहुधा बहुत अधिक समय लगता है, और उस दौरान बहुत सारी कठिनाइयां सिर उठा सकती हैं, लेकिन अगर व्यक्ति डटा रहे तो एक समय ऐसा आता है जब सब कुछ तैयार हो जाता है, तब माताजी की शक्ति व्यक्ति की चेतना को पूरी तरह से भगवान् के प्रति खोल देती है, और तब, जो कुछ विकसित होना होता है, अन्दर-ही-अन्दर विकसित हो जाता है, आध्यात्मिक अनुभूतियां आती हैं और उसके साथ-साथ ज्ञान का उदय होता है और भगवान् के साथ ऐक्य स्थापित हो जाता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २००

मां के प्रति बच्चे का सम्बन्ध पूरी तरह से निष्कपट-सरल विश्वास, प्रेम तथा निर्भरता का होता है।

तुम मां के बालक हो और मां का अपनी सन्तानों के प्रति प्रेम असीम होता है और वे उनके स्वभाव के दोषों को धीरज के साथ सहती रहती हैं। मां के सच्चे बालक बनने की कोशिश करो : वह चीज तुम्हारे अन्दर है, लेकिन तुम्हारा बाहरी मन छोटी-छोटी, तुच्छ चीजों में रमा रहता है और बहुत, बहुत बार बातों का बतंगड़, राई का पहाड़ बना देता है।

माताजी के प्रति चैत्य रूप से खुले रह कर, कार्य या साधना के लिए जो कुछ जरूरी होता है, क्रमशः विकसित होता जाता है—यही है प्रमुख रहस्यों का एक रहस्य, साधना का केन्द्रीय रहस्य।

माता और बालक के बीच सम्बन्ध का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि मां बच्चे से प्यार करे बल्कि बच्चे को भी मां से प्यार करना चाहिये और उसका आज्ञाकारी होना चाहिये। तुम श्रीमां का सच्चा बालक बनना चाहते हो, लेकिन इसके लिए पहली चीज है कि स्वयं को उनके हाथों में सौंप दो, उन्हें तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करने दो और उनकी इच्छा का अनुसरण करो—न तो उसकी उपेक्षा करो और न ही उनके विरुद्ध विद्रोह करो।

बालक का प्राण जिस किसी भी चीज की मांग करे उसे पूरा कर देना—यह सच्चे मातृप्रेम का अंग नहीं है, क्योंकि वह जानती है कि यह उसके लिए बहुत ही बुरा होगा। अपने प्राणिक आवेगों का अनुसरण मत करो, बल्कि अपनी सच्ची समझ का अनुसरण करो और स्वयं को श्रीमां की इच्छा का एक माध्यम बनाओ—क्योंकि उनकी इच्छा है कि तुम्हें सदैव अपनी सच्ची सत्ता में विकसित होना चाहिये।

शान्त और अचञ्चल रह कर मां का स्मरण करो और स्वयं को उनके प्रति खोलो। ध्यान का यही नियम है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४४८, ४५२-५३, १५४, ४६०, ४२४

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अप्रैल

१. ऐसा कोई भी नहीं है जिसके लिए भगवान् को पाना असम्भव हो। कुछ लोगों के लिए इसमें बहुत-बहुत जन्म लग जायेंगे जब कि ऐसे लोग भी हैं जो इसी जन्म में उन्हें पा लेंगे। यह संकल्प का प्रश्न है, स्वयं तुम्हें चुनाव करना होगा।

लेकिन मुझे कहना चाहिये कि वर्तमान समय में परिस्थितियां विशेष रूप से अनुकूल हैं।

२. व्यक्तिगत जीवन का प्रयोजन है भगवान् को खोजने और उनके साथ एक होने का आनन्द। जब तुम यह बात समझ लो तो तुम सभी कठिनाइयों को पार करने की शक्ति पाने के लिए तैयार होते हो।

३. हर एक के अन्दर अपने अहंकार होते हैं और सभी अहंकार एक दूसरे से टकराते रहते हैं। आदमी स्वतन्त्र सत्ता तभी बन सकता है जब वह अहंकार से पीछा छुड़ा ले।

स्वतन्त्र होने के लिए तुम्हें पूरी तरह केवल भगवान् का ही होना चाहिये।

४. अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए जो अच्छी-से-अच्छी चीज हम कर सकते हैं वह है अपने अन्दर अहंकार पर विजय पाना और रूपान्तर के लिए सतत प्रयास करना।

५. मानव अहं इस कारण अपदस्थ होने से इन्कार करता है कि और लोग रूपान्तरित नहीं हुए हैं। लेकिन यही दुर्भावना का किला है क्योंकि हर एक का कर्तव्य है कि और लोग क्या करते हैं उसकी परवाह किये बिना अपने-आपको रूपान्तरित करना।

६. सदा सीखना—बौद्धिक नहीं चैत्य रूप से—स्वभाव में प्रगति करना, अपने अन्दर गुण पैदा करना और दोष ठीक करना ताकि हर चीज हमें अज्ञान और अक्षमता से मुक्त करने के लिए अवसर हो—तब जीवन बहुत अधिक रुचिकर और जीने-योग्य बन जाता है।

७. पहली चीज जो भौतिक चेतना को समझनी चाहिये वह यह है कि

जीवन में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे सब इस तथ्य से आती हैं कि हमें जिस सहायता की आवश्यकता है उसके लिए हम ऐकान्तिक रूप से भगवान् पर निर्भर नहीं रहते।

८. पूर्ण विश्वास और कृतज्ञता के साथ अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण करने से ही हमें कठिनाइयों पर विजय मिलेगी।

९. मानव चेतना इतनी ज्यादा भ्रष्ट है कि मनुष्य भगवान् के प्रति सच्चे समर्पण से प्राप्त होने वाले ज्योतिर्मय आनन्द की अपेक्षा अहंकार और उसके अज्ञान से आने वाले दैन्य को अधिक पसन्द करते हैं। उनका अन्धापन इतना अधिक है कि वे परीक्षण करने से भी इन्कार करते हैं और दुःख-दैन्य से पिण्ड छुड़ाने के लिए प्रयास करने की अपेक्षा उसके आधीन होना ज्यादा पसन्द करते हैं।

१०. जब सारी सत्ता, अपने सभी भागों और सभी क्रियाओं में समस्त सच्चाई के साथ कह सके 'तुम जो चाहो, तुम जो चाहो' तब तुम सच्ची निष्ठा के मार्ग पर होते हो।

११. ... भागवत उपस्थिति तो हमेशा रहती है, हम अपने अज्ञान, लापरवाही या अन्यमनस्कता के कारण उसका अनुभव नहीं करते। लेकिन जब भी हम ध्यान दें या एकाग्र हों तो हम सभी चीजों के एक अद्भुत रूपान्तर के बारे में सचेतन हो सकते हैं।

१२. अपनी बाहरी परिस्थितियों से परे हटने की कोशिश करो, केवल वे ही ऐसी चीजों से परेशान होती हैं, और अपने अन्दर की उस शान्ति को खोजो जो हमेशा अस्पृश्य रहती है।

१३. विरोधी शक्तियों को जगत् में केवल इसी कारण सहा जाता है कि वे मनुष्य की निष्कपटता की कसौटी होती हैं। जिस दिन मनुष्य सर्वांगीण रूप से सच्चा और निष्कपट बन जायेगा ये चीजें चली जायेंगी, क्योंकि तब उनके रहने का कोई कारण न रहेगा।

१४. तुम केवल अपने पक्ष को देखते हो। अगर तुम अपनी चेतना को विस्तृत करना चाहो तो ज्यादा अच्छा होगा कि निष्पक्ष होकर सभी पक्षों को देखो। बाद में तुम्हें पता चलेगा कि इस वृत्ति के बहुत लाभ हैं।

१५. आओ, हम प्रतिदिन चिन्ता के बिना जियें। जो चीज शायद कभी न

हो उसके लिए पहले से ही चिन्ता क्यों की जाये?

१६. हमें हर रोज सभी भूलों, सभी अन्धकारों, सभी अज्ञानों पर विजय पाने की अभीप्सा करनी चाहिये।

१७. धन्य होगा वह दिन जब पृथ्वी 'सत्य' के प्रति जाग कर, केवल भगवान् के लिए जियेगी। 'सत्य' तुम्हारे अन्दर है—लेकिन उसे चरितार्थ करने के लिए तुम्हें उसकी चाह करनी होगी।

१८. पूर्ण सामञ्जस्य : —वस्तुओं के बीच सामञ्जस्य, लोगों के बीच सामञ्जस्य, परिस्थितियों का सामञ्जस्य और सबसे बढ़ कर 'परम सत्य' की ओर अभिमुख सभी अभीप्साओं का सामञ्जस्य।

१९. अचञ्चल रहो, अपने-आपको अनासक्त करके साक्षी की तरह अवलोकन करने की कोशिश करो, आवेश में आकर क्रिया करने की समस्त सम्भावना को रोकने की कोशिश करो।

२०. प्रश्न : हे मां, गड़बड़ अभी तक गायब नहीं हुई है। मैं पहले से भी ज्यादा बुरी हालत में हूं। मेरे मन में कुछ खराबी है। और मुझे हर जगह बुरा लगता है। बतलाइये मैं क्या करूं?

उत्तर : किसी और चीज के बारे में सोचो। अपने-आपको व्यस्त रखो, कुछ न करते हुए अपने-आपको आलसी बना कर न रखो।

२१. ये सभी चीजें, यह बेचैनी, यह थकान, प्रगति के टूटने का संस्कार —ये सब चीजें प्राण से आती हैं, जो विद्रोह करता है क्योंकि उसकी कामनाओं और पसन्दों की सन्तुष्टि नहीं हुई। इन सबमें कोई सच्ची वास्तविकता नहीं है।

२२. मैं तुम्हारे हृदय में हूं ताकि तुम खुश रहो, तुम्हारे सिर में हूं ताकि तुम शान्त रहो और तुम्हारे हाथों में हूं ताकि उनमें कौशल आये।

२३. अपनी अशुद्धियों के बारे में बहुत ज्यादा सोचना सहायता नहीं करता। तुम जो शुद्धि, प्रकाश और शान्ति प्राप्त करना चाहते हो उन पर अपने विचार को बनाये रखना ज्यादा अच्छा है।

२४. अपनी चेतना का विस्तार करो और सबके सन्तोष की सतत अभीप्सा करो।

अगर उचित वृत्ति हो तो हम अपनी छोटी-से-छोटी क्रिया में भी भगवान् की सेवा कर सकते हैं।

२५. तुम अपने-आपको हतोत्साह न होने दो। चाहे कैसा भी पतन हो, केवल फिर से उठ खड़ा होना ही सम्भव नहीं है बल्कि और ज्यादा ऊंचा उठना और लक्ष्य तक पहुंचना भी सम्भव है। केवल प्रबल अभीप्सा और निरन्तर संकल्प की आवश्यकता है।

२६. हे मेरे मधुर स्वामी, परम 'सत्य'! मैं अभीप्सा करती हूं कि मैं जो भोजन लेती हूं वह मेरे शरीर के समस्त कोषाणुओं में तेरा सर्व-ज्ञान, तेरी सर्व-शक्ति और तेरा सर्व-शुभ भर दे।

२७. तुम सम्पूर्ण त्याग की बात कर रहे हो, लेकिन शरीर को छोड़ना सम्पूर्ण त्याग नहीं है। सच्चा और पूर्ण त्याग है अहं का त्याग जो कहीं अधिक दुःसाध्य प्रयास है। अगर तुमने अपने अहं को न त्यागा हो तो शरीर छोड़ देने से तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी।

२८. तुम्हारे लिए शुरू करने का सबसे अच्छा तरीका है, अपनी चैत्य सत्ता को अपनी सभी आन्तरिक गतिविधियों का साक्षी बना कर उस पर एकाग्र होओ, तुम्हें जो कुछ करना और नहीं करना चाहिये, उसका निर्णायक बनाओ और अपनी बाह्य प्रकृति को उसके निर्णयों के आधीन बनाने की कोशिश करो।

२९. अपने-आपको भूल जाने का सबसे सरल मार्ग है, हमेशा ठीक चीज, ठीक तरीके से, ठीक समय पर करो।

केवल तभी जब हम विक्षुब्ध न हों, हम हमेशा ठीक समय पर, ठीक तरह से चीज कर सकते हैं।

हर रोज, हर क्षण, हम हमेशा ठीक चीज ठीक तरह से करने की अभीप्सा करेंगे।

३०. कृतज्ञता : —भगवान् से मिलने वाली कृपा की प्रेमपूर्ण मान्यता। भगवान् ने तुम्हारे लिए जो कुछ किया है और कर रहे हैं उसकी नम्र मान्यता।

भगवान् के प्रति सहज आभार का भाव। भगवान् तुम्हारे लिए जो कुछ कर रहे हैं उसके लिए कम अयोग्य बनने हेतु यह भाव भरसक प्रयत्न करवाता है।

एक साधक के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार

(ये पत्र एक ऐसे साधक को लिखे गये थे जो उन्नीसवीं शती के तीस के दशक में श्रीअरविन्दाश्रम में दांतों के डॉक्टर थे और १९३८ से १९५० तक श्रीअरविन्द की व्यक्तिगत सेवा में रहे थे। पूरा पत्र-व्यवहार अंग्रेज़ी में हुआ था।)

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हारे सुन्दर-से और स्नेहमय पत्र ने मुझे खुश कर दिया।

कल रात नीरवता में मैंने तुमसे कहा, "तुम जिसके लिए अभीप्सा करते हो वहां तक पहुंचने के लिए मार्ग है प्रेम, और लक्ष्य भी प्रेम ही है।" क्या तुम्हारे पत्र का यह अच्छे-से-अच्छा उत्तर नहीं है?

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१७ जुलाई १९३९

कुपुत्र तो हुआ करते हैं पर कुमाता कभी नहीं।

लेकिन कैसे आनन्द की बात होती है जब पुत्र और माता दोनों ही अच्छे हों!

मेरे प्रिय (सु)पुत्र को प्रेम और आशीर्वाद।

२७ जुलाई १९३९

मैं जानता हूं कि आपका भाव अच्छा है लेकिन अच्छा, सचमुच अच्छा होना उन्हीं के लिए सम्भव हो सकता है जो समस्त अहंकार के परे चले गये हों; लेकिन अगर मेरी मां अपने बच्चों में केवल अच्छा ही देखना चाहती हैं तो यह मां के हृदय की अच्छाई का सूचक है।

मेरे बालक का हृदय भगवान् के प्रेम और प्रकाश से भरा है। ये दोनों तुम्हारी समस्त सत्ता में चमकें और अगर कोई बादल हैं तो वे शीघ्र ही गायब हो जायेंगे।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२८ जुलाई १९३९

(माताजी ने साधक को अचार की एक बोतल भेजी। वह लिखता है), प्यारी मां, आप मुझे अपने प्रेम से अभिभूत करती हैं। मैं जानता हूं कि आप मुझे जितनी कृपा प्रदान करती हैं मैं उसके लवलेश का भी अधिकारी नहीं हूं। मैं आपसे क्या कहूं, जिनका स्वभाव ही है अभिभूत करने वाला दिव्य प्रेम? आपका प्रेम अपने-आपमें अमूल्य उपहार है; फिर ये दूसरे उपहार किसलिए?

देने में बड़ा आनन्द है, उससे भी बढ़ कर आनन्द है उन लोगों को खुश करने में जिनसे हम प्रेम करते हैं... जब तुम यह अचार खाओगे तो मुझे याद करोगे और सोचोगे, माताजी मुझसे प्यार करती हैं...

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

६ अगस्त १९३९

प्यारी, प्यारी, प्यारी मां,

मैं आपको ढेरों प्रेम भेजता हूं। मेरे हृदय-कमल में आपके चरण-कमल प्रेम के सिंहासन पर सदा प्रतिष्ठित रहें।

मेरे प्यारे स्नेहमय बालक,

तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हारा हृदय बहुत मधुर स्थान है—मुझे हमेशा उसमें रखो ताकि मैं तुम्हारी सारी सत्ता को प्रकाश, प्रेम और आनन्द से भर सकूं।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

८ अगस्त १९३९

हे देवी, हे मां!

मैं अपने हृदयकक्ष की रहस्यमय गुफाओं में हमेशा इस सहजबोधात्मक विश्वास के बारे में अभिज्ञ रहा हूं कि आप उन दिव्य जननी की अवतार हैं जिनकी मैं आराधना करता हूं और जिन्हें मैं उनके चरण-कमलों के सिवा किसी और तरह से नहीं जानता। इसी कारण मेरी आंखें उन्हें आपके पाद-पद्मों में खोजती हैं और मेरा हृदय उन्हें यह जानते हुए अपने साथ चिपका लेने के लिए ललकता रहता है कि वे ही उसका एकमात्र आश्रय हैं।

मेरे प्यारे, प्यारे बालक, तुम्हारे अन्दर ठोस रूप से, भागवत प्रेम की मधुरता में, सचेतन निश्चिति का प्रकाश और चिरंजीवी उपस्थिति का आनन्द सदा बना रहे।

१० अगस्त १९३९

क्या आप मुझे कृपा करके बतलायेंगी मेरी मां, कि क्या आप मेरी अकिञ्चन मानवता के बावजूद सचमुच मेरे साथ अकृत्रिम रूप से प्रेम करती हैं या यह सब कुछ एक परीक्षण ही है? मुझे ऐसा प्रश्न करते हुए लज्जा आती है, लेकिन मैं "परीक्षण" शब्द का बहुधा ऐसे नाना अर्थों में उपयोग सुनता हूं कि मुझे डर लगता है और मैं स्वयं आपसे सुनना चाहूंगा कि आप हमारे साथ केवल परीक्षण ही तो नहीं कर रहीं? क्षमा-प्रार्थना करता हुआ...।

मेरे प्यारे बालक,

हां, तुम जो सबसे अच्छी चीज कर सकते हो वह यह है कि लोग तुमसे जो कहें उस पर कान न दिया करो। यह तुम्हें चेतना की बहुत-सी गिरावटों से बचा लेगा। आज तीसरे पहर जब मैंने तुम्हें मूक रूप से देखा तो मैंने कहा, "अपने प्रेम के प्रति निष्ठा बनाये रखो।" मेरा ख्याल है कि यह तुम्हारे लिए पर्याप्त उत्तर है और तुम मुझसे यह आशा न करोगे कि ऐसी अज्ञानभरी मूर्खतापूर्ण टीकाओं के आगे मैं अपने प्रेम की सफाई दूं। तुम विश्वास करो या सन्देह करो, मेरा प्रेम और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

१२ अगस्त १९३९

प्यारी मां,

मैं अपने कल के प्रश्न के लिए क्षमाप्रार्थी हूं और प्रार्थना करता हूं कि मेरी मूढ़ता को क्षमा कर दिया जायेगा।

ओह! मैं आपके प्रेम के बारे में शंका कर ही कैसे सकता हूं जब कि आप सत्य, प्रेम और शुभ की आत्मा हैं?

मेरे प्यारे बालक,

मैं जानती थी कि वह एक उड़ता हुआ मनोभाव था और तुम शीघ्र

उसमें से निकल आओगे—लेकिन इस प्रेम और इस सत्य को अपनी ढाल बना लो जो मिथ्यात्व की किसी भी शक्ति की घुसपैठ से तुम्हारी रक्षा करे।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद तुम्हें अपने लक्ष्य की ओर ले जायेगा।

१३ अगस्त १९३९

मेरे अत्यन्त प्यारे बालक,

अगर तुम अपनी आन्तरिक खुशी को हमेशा बनाये रख सको तो इससे मुझे बहुत खुशी होगी और यह तुम्हें मार्ग पर बहुत सहायता देगी।

प्यारे बालक, तुम्हें मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१७ अगस्त १९३९

आपका प्रेम ही मेरे लिए सच्चा आश्रय और एकमात्र बल है। मां, मैं आपको जो कुछ अर्पित करता हूं वह एक गंदला मिश्रण है जिसके बारे में मैं लज्जित हूं, लेकिन उसे आप ही शुद्ध कर सकती हैं।

मेरे बहुत प्यारे बच्चे,

अर्पण का रूप चाहे जैसा हो, जब वह सच्चाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अन्दर भागवत प्रकाश की एक चिंगारी लिये रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है। तुम मेरे प्रेम के बारे में विश्वस्त रह सकते हो, तुम मेरी सहायता के बारे में विश्वस्त रह सकते हो और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१९ अगस्त १९३९

*आप कितनी प्यारी हैं, प्यारी अम्मी! क्या सारे संसार में आप जैसा कोई और है? **प्रेम**।*

मेरे प्यारे, प्यारे बालक को प्रेम, प्रेम, प्रेम; समस्त आनन्द, समस्त ज्योति और दिव्य प्रेम की समस्त शान्ति और साथ ही मेरे प्रेममय आशीर्वाद।

२० अगस्त १९३९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २३८-२४३

कुछ मनके जिन्दगी के

(२६ जनवरी, स्व. श्री रवीन्द्र जी के जन्मदिन की कनिष्ठा जी की सौगात। —सं.)

ये कुछ कहानियां जो मैं आपके सामने प्रस्तुत करने जा रही हूं, हैं तो बिलकुल छोटी और साधारण-सी दीखने वाली, लेकिन उनके पीछे जो गहरी सच्चाई है, जो भावनाएं हैं, वे दिल को भेद कर निकल जाती हैं। इससे दिल घायल नहीं होता, बल्कि एक ही साथ ज्यादा मजबूत और ज्यादा संवेदनशील भी हो जाता है। जिस तरह अनगिनत बूंदों से महासागर बनता है उसी तरह मानवीय भावनाओं और विचारों के ताने-बाने से ही मानव जीवन का रंग-बिरंगा चित्र उभरता है। वह कभी पेचीदा होता है तो कभी सरल, कभी सुन्दर तो कभी कुरूप। मानवीय भावनाएं भी महासागर की बूंदों की तरह अनगिनत हैं। लीजिये उनकी कुछ झलकियां।

१. यह पहला अनमोल रतन श्री विवेकानन्द का लिखा हुआ है। वे कहते हैं :

"जब आसमान से पानी बरसता है तो उसकी बूंदें शुद्ध और पवित्र होती हैं; इतनी कि उन्हें अञ्जलि में धर कर प्यास बुझायी जा सकती है। लेकिन वे ही बूंदें अगर नाले में गिर गयीं तो वे गन्दी और सेहत के लिए घातक हो जाती हैं। उनका मूल्य घट जाता है। इतना कि वे पांव धोये जाने के काबिल भी नहीं रहतीं! अगर वे ही बूंदें गरम, तपती सतह पर पड़ जाती हैं तो वे भाप बन कर गायब हो जाती हैं, उनका अस्तित्व ही मिट जाता है। मगर वे ही बूंदें अगर कमल के दल पर आ टपकती हैं तो वे मोती-सी चम-चम चमकने लगती हैं! और अन्त में, अगर वे ही बूंदें शुक्तियों में जा गिरती हैं तो केवल मोती की तरह चमकती ही नहीं हैं, बल्कि सचमुच मोती ही बन जाती हैं! बूंदें वह की वही हैं, लेकिन अलग-अलग परिस्थितियों में उनका वुजूद ही बदल जाता है!"

तो इससे हमें यह सीख मिलती है कि जीवन में हमें अपने साथी, अपने हमसफर सोच-समझकर चुनने चाहियें। संगत आदमी को बना भी सकती है और बिगाड़ भी सकती है। अच्छी संगत प्रगति की ओर ले

जाती है और बुरी संगत तबाही की ओर। इसलिए विवेक से काम लेना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

२. यह दूसरी कहानी भी श्री विवेकानन्द से ही जुड़ी हुई है। यह उन दिनों की बात है जब श्री विवेकानन्द लंदन के "यूनिवर्सिटी कॉलेज" में वकालत पढ़ा करते थे। उनके एक अध्यापक थे जिनका नाम था मिस्टर पीटर्स। उनकी यह बदकिस्मती थी कि वे श्री विवेकानन्द से, न जाने क्यों, सख्त नफरत करते थे। शायद अपनी गोरी चमड़ी का उनको गुरूर था, शायद भारत जैसे गरीब देश से आने वाले छात्रों को वे विश्वविद्यालय के काबिल नहीं समझते थे... खैर... एक दिन कैंटीन में बैठे वे खाना खा रहे थे कि श्री विवेकानन्द अपनी थाली लेकर आये और उनकी ठीक बगल में बैठ गये। प्रोफ़ेसर साहब को यह तनिक भी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने श्री विवेकानन्द से कहा, "क्या एक शूकर और एक पंछी को कभी एक साथ बैठ कर खाते देखा है?" तो विवेकानन्द ने उनकी ओर अनुकम्पा से देखते हुए कहा, (मानों एक पिता अपनी बदतमीज औलाद को प्यार से समझा रहा हो), "कोई बात नहीं, प्रोफ़ेसर साहब, मैं उठ कर चला जाता हूं!" और यह कह कर वे उठ कर पासवाली मेज पर जा बैठे!

इससे प्रोफ़ेसर साहब को और गुस्सा आ गया। उन्होंने ठान ली कि इस छोरे को सबक सिखा कर ही रहेंगे।

अगले दिन कक्षा में उन्होंने श्री विवेकानन्द से एक सवाल किया, उन्होंने पूछा, "तुम्हें रास्ते पर पड़ी दो थैलियां दिख जाती हैं। एक में पैसा अटाअट भरा हुआ है और दूसरी भरी हुई है ज्ञान और प्रौढ़ता से। अब तुम्हें एक थैली उठानी है, कौन-सी वाली चुनोगे?" तो विवेकानन्द ने झट से कहा, "मैं तो पैसेवाली ही लूंगा!" यह सुन कर प्रोफ़ेसर साहब उनकी खिल्ली उड़ाते हुए बोले, "शाबाश! तुमसे मुझे यही उम्मीद थी! पैसे के लालची जो हो!" श्री विवेकानन्द ने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कहा, "प्रोफ़ेसर साहब, यह बहुत सरल-सी बात है कि जिसके पास जो नहीं होता, वह वही लेता है!" इससे मिस्टर पीटर्स का खून और खौलने लगा। अब की बार चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये, बाजी उन्हीं को जीतनी है।

इम्तेहान सर पर थे, तभी शायद कुछ किया जा सकता है। तो जब पहला परीक्षा-पत्र आया, और संशोधन के बाद लौटाया गया, तब श्री

विवेकानन्द के परीक्षा-पत्र पर प्रोफ़ेसर पीटर्स ने लिखा, "बेवकूफ!" वह भी बड़े-बड़े अक्षरों में और लाल स्याही से! यह देख कर श्री विवेकानन्द को बहुत ठेस लगी। उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उनके अध्यापक इस हद तक गिर जायेंगे। कुछ देर तो वे चुपचाप बैठे रहे, फिर उठ कर प्रोफ़ेसर साहब के पास गये और अत्यन्त विनम्रता के साथ बोले, "सर, आपने मेरे परीक्षा-पत्र पर हस्ताक्षर तो कर दिये हैं, मगर शायद मुझे अंक देना भूल गये हैं!"

प्रोफ़ेसर साहब की बोलती ही नहीं, बल्कि हरकतें भी बन्द हो गयीं!

इस कहानी से हमें यह सीख मिलती है कि हर मनुष्य एकसमान है, चाहे वह सुन्दर हो या कुरूप, चाहे वह राजा हो या रंक, चाहे उसका जन्म किसी भी देश में क्यों न हुआ हो। हम सभी भगवान् के ही शिशु हैं। हम सभी मनुष्य एक-दूसरे से प्रेम और सभ्यता से पेश आयेंगे तो कितनी शान्ति होगी, कितना सामञ्जस्य होगा धरती पर!

तो ये थीं श्री विवेकानन्द जैसी महान् हस्ती से जुड़ी दो कहानियां। अब सुनिये तीन और छोटी कहानियां। वे जुड़ी हुई हैं आजकल के जमाने की एक और महान् हस्ती से। श्री सत्य नडेला का नाम तो आपने सुना ही होगा? वे हैं जगत् की सुप्रसिद्ध कम्पनी माइक्रोसॉफ्ट के 'सी.ई.ओ'। तीनों कहानियां बहुत मर्मस्पर्शी हैं। वे कहते हैं :

"मैं और मेरा साथी कीनिया में सफर कर रहे थे। वहां पर ज़िम्बाब्वे से आये एक शरणार्थी से हमारी मुलाकात हुई। पता चला कि तीन दिनों से वह भूखा था। रोटी का एक निवाला भी उसे नसीब नहीं हुआ था। वह इतना कमजोर और दुबला-पतला था कि उसकी पसलियां साफ नजर आ रही थीं। मेरा साथी एक 'सैंडविच' खा रहा था। वह भूखा-प्यासा शरणार्थी उसके हाथ से छीनने की कोशिश करे, उससे पहले मेरे साथी ने झट से वह जूठा 'सैंडविच' उसके हाथ में थमा दिया। मगर उस आदमी की प्रतिक्रिया ने हम दोनों को झकझोर कर रख दिया!! जिस आदमी के गले से तीन दिनों से एक निवाला तक नहीं उतरा था, उस आदमी के गले से ये शब्द निकले : "भाइयो, हम तीनों मिल-बांट कर यह रोटी खायेंगे!"

हम दोनों हक्के-बक्के रह गये! हम ठहरे शिक्षित मनुष्य, जगत् में बहुत ही जाने-माने कम्पनी के उच्चतम अधिकारी, और यह ठहरा बिचारा

अनपढ़, भूखा-प्यासा और गरीब, मगर इसमें हमसे ज्यादा इन्सानियत थी! हमको लगा वह 'सैंडविच' पर झपट्टा मारेगा, लेकिन वह तो हमें शुक्रिया अदा करने के बाद वही 'सैंडविच' हमारे साथ मिल-बांट कर खाना चाहता था! उस दिन मुझे महानता की, सच्ची इन्सानियत की झलक मिली! हमारी आंखें भर आयीं, और हमारे शीश झुक गये शर्म से भी और साथ-साथ सम्मान से भी कि हमारे बीच ऐसे मनुष्य भी मौजूद हैं!

लीजिये सुनिये उन्हीं की सुनायी एक और दिलचस्प घटना :

"अपने कॉलेज के दिनों में, मनोविज्ञान के बारे में एक 'रिसर्च' के दौरान मैं अलग-अलग लोगों का साक्षात्कार कर रहा था। अन्त में जब मैं घर लौटा तो मेरी नानी बैठी हुई थीं। हमेशा से मैं उनका लाडला रहा था, इसलिए मेरा बर्ताव उनके साथ एक मित्र-समान होता था। मैंने हलके-फुलके स्वर में उनको छेड़ते हुए कहा, "अरे नानी, अब मैं तेरा 'इंटरव्यू' लूंगा! बोल "सफलता" तेरे लिए क्या मायने रखती है? क्या तू उसकी व्याख्या कर सकती है?" पल-भर भी हिचकिचाये बिना वे बोलीं, "बेटा, सफलता मैं उसे कहूंगी जब तुम मुड़ कर अपनी बीती हुई जिन्दगी की तरफ देखो, और जो दृश्य तुम्हारे मन की आंखों के सामने आये, वह तुम्हें दुःख या दर्द न देकर तुम्हें मुस्कुराने और खुश होने के लिए मजबूर कर दे! बस, यही मेरे लिए सफलता है।" मैं दंग रह गया, दूर-दूर तक घूम कर, अलग-अलग वर्गों के लोगों का 'इंटरव्यू' लेकर घर लौटा, तो सबसे सही और सुन्दर जवाब मुझे घर बैठे-बिठाये ही मिल गया!

श्रीमां ने सच ही कहा है कि पूरी जिन्दगी ही शिक्षा है, अपने उतार-चढ़ाव से वह हमें कितना कुछ सिखा जाती है! श्री नडेला की नानी जिन्दगी की पाठशाला में अव्वल नम्बर लेकर निकली थीं!

अब रही आज की ृंखला की अन्तिम कड़ी। बिलकुल छोटी-सी, कुछ ही वाक्यों की, लेकिन उसे पढ़ते ही मेरी आंखें भर आयीं।

श्री नडेला का एक पालतू कुत्ता था। वह उनका सबसे अच्छा मित्र था। पिल्ला था जब उनके यहां आया था, और देखते-न-देखते वह पूरे परिवार के लिए घर का एक सदस्य बन गया। वह खेलता तो सभी के साथ था, लेकिन श्री नडेला को ही अपना दोस्त और मालिक मानता था। जब वे शाम को थके-मांदे घर लौटते तो वह भागा-भागा उन पर यूं झपट

पड़ता मानों तोप से निकला एक गोला हो! बिचारे नडेला जी बचना चाहें तो भी उससे बच नहीं पाते थे। जब वे फर्श पर चित् हो जाते तो वह उनका मुंह चाटने लगता! बस, इसके बाद तो उनकी थकान बिलकुल छू-मन्तर हो जाती थी!

मगर अफसोस, एक दिन इसी तरह अपने दोस्त का स्वागत करने निकला तो तेजी से आ रही गाड़ी से टकरा कर गिर पड़ा। हस्पताल ले गये तो पूरी कोशिश के बावजूद डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। बताया कि वह बस कुछ मिनटों का मेहमान है। नडेला जी ने उसे अपनी गोद में रख कर, अपनी बांहों से घेर लिया और फूट-फूट कर रोने लगे। उनके आंसू तो रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। हे भगवान्, आपने मेरे दोस्त को क्यों नहीं बचा लिया? कैसे जी पाऊंगा इसके बिना? शोक के सागर में वे ऊभ-चूभ कर रहे थे। तभी अचानक उनके दोस्त ने आंखें खोलीं, वह अपने मालिक की तरफ कुछ पल देखता रहा, फिर धीरे से उनके बहते आंसुओं को चाटने लगा मानों कह रहा हो, "हिम्मत मत हारो जिन्दगी में मेरे दोस्त, मेरे मालिक, मैं तो आपके दिल में हमेशा जिन्दा ही रहूंगा!" फिर सदा के लिए उसने आंखें मूंद लीं।

अब इसके आगे मैं कुछ और लिखना चाहूं तो भी मुमकिन नहीं क्योंकि आंखों की नमी ने कागज को धुंधला बना दिया है। इसलिए अगली बार मुलाकात होगी कुछ और दिल को छू जाने वाली, साधारण-सी प्रतीत होने वाली कहानियों के साथ! तब तक के लिए खुदाहाफ़िज।

—कनिष्ठा

क्यों न भारत संसार में पहली शक्ति हो? भला कौन दूसरा संसार में निर्विवाद रूप से आध्यात्मिक आधिपत्य स्थापित कर सकता है? स्वामी विवेकानन्द की यही थी समर-योजना। आध्यात्मिक महानता में सर्वोपरि होने के द्वारा भारत को फिर से अपनी महानता के प्रति सचेतन बनाया जा सकता है। महानता की भावना ही देशभक्ति की प्रमुख पोषक भावना है। केवल वही समस्त आत्म-अविश्वास का अन्त कर सकती है और खोयी जमीन को फिर से पाने के लिए धधकती आग जला सकती है।

१९ जून १९०७ *—श्रीअरविन्द*

ढाई आखर प्रेम का

(स्व. श्री यशपाल जैन जी की कथा-निर्झरिणी से निकली हुई यह कहानी-तरंग उन्हीं को समर्पित है।

सम्भवतः कहानी पढ़ कर आपको यह पढ़ी हुई लगे, क्योंकि इसके पहले २००२ में पुरोधा के फरवरी अंक में यह दी गयी थी—सं.)

वैसे नाम तो था उनका रहमतुल्ला खां, लेकिन सारे गांव में बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी उन्हें मौलवी साहब के नाम से पुकारते थे। छोटा-सा गांव, कुछ पक्के, कुछ कच्चे मकान, गोधूलि वेला में पगडण्डियों की उड़ती धूल और खेतों में हल चलाते स्वस्थ किसान—संक्षेप में, भारतवर्ष के किन्हीं भी सामान्य गांवों में गणना की जा सकती थी उस छोटे-से गांव की, लेकिन मौलवी साहब के लिए वह स्वर्ग के टुकड़े से कम न था, सपने में भी वे अपनी जन्मभूमि को छोड़ने की कभी बात न सोच सकते थे क्योंकि शैशव की, युवावस्था की कितनी ही खट्टी-मीठी, गुदगुदाने वाली स्मृतियों के पक्के रंग अब भी उनके हृदय-पटल पर अंकित थे। वैसे उस गांव के प्रति उनकी आसक्ति का मुख्य लेकिन हृदयद्रावक कारण यह भी था कि वहीं उनके किशोर पुत्र की कब्र थी जिसे असमय ही अल्लाह ने अपने पास बुला लिया था। उसी की यादगार के रूप में मौलवी साहब ने वहां सालों से एक मदरसा खोल रखा था जिसमें उनकी जान अटकी हुई थी। भूतपूर्व, वर्तमान सभी छात्र उनकी आंखों के तारे थे, उनके सब कुछ थे। छात्रों के लिए भी गुरुवचन वेदवाक्य होता, उनका जरा-सा इशारा बच्चों के लिए आदेश बन जाता—ऐसा था गुरु-शिष्य का सम्बन्ध। मौलवी साहब के घर में न कभी दूध-घी की कमी पड़ती, न साग-सब्जियों की, उनकी चिलम कभी ठण्डी न पड़ती क्योंकि बच्चे हमेशा उनकी सेवा-सुश्रूषा का काम भी हठ करके करते। घर से लताड़े बच्चों के लिए सुख-शय्या थी मौलवी साहब की कुटिया और गांववाले तो यह सोच कर उनसे वैसे ही प्रसन्न रहते कि चलो, ये भले आदमी हमारी सन्तानों को लिखा-पढ़ा कर इस लायक बना रहे हैं कि जहां जायेंगे सुनाम कमायेंगे। और हर एक के मुंह से मौलवी साहब के लिए हमेशा दुआएं ही निकलतीं।

खैर, समय का प्रवाह कभी धीमा तो कभी तेज बहता चला गया। इस

बीच मौलवी साहब के जीवन में एक झटका लगा। पत्नी के देहान्त ने उन्हें एकबारगी बौखला दिया, परिवार की दृष्टि से वे एकदम अकेले रह गये —पहले पुत्र फिर पत्नी—इस दुधारी मार को वे केवल इसी कारण सह पाये कि इस घटना के बाद उनकी छात्र-मण्डली, सुहृद्-मण्डली ने उनके प्रति ऐसा प्रेम का सागर बहाया कि उनके दुःख को उसमें डुबो कर ही दम लिया। पत्नी के वियोग के बाद मौलवी साहब ने प्रत्यक्ष रूप से यह अनुभव किया कि दुःख में अपने कितने काम आते हैं, कितने करीब जुड़ जाते हैं। पहले की तरह उनका मदरसा चलता रहा, पहले की तरह गांव की सुख-शान्ति बरकरार रही।

कुछ साल और पंख लगा कर उड़ गये। मौलवी साहब की दाढ़ी-मूछों पर हिम की-सी सफेदी छा गयी, कमर में जरा-सा झुकाव आ गया, आंखों के धुंधलेपन के कारण चश्मा चढ़ गया, लेकिन हृदय की ताजगी में कोई कोहरा न छाया, उनका मदरसा बीस साल पहले की तरह चहका किया।

लेकिन...

लेकिन... 'सब दिन होत न एक समान'। अचानक साम्प्रदायिकता की ऐसी आग भड़की कि देखते-न-देखते सारे देश में छा गयी। अमानुषिक दृश्यों से देश पट गया, कल के हितैषी आज जानी दुश्मन बन गये। नगरों में छायी इस आग को गांवों में पहुंचने में देर न लगी। मौलवी साहब को भी अपने छोटे-से गांव में कुछ बदलाव तो जरूर नजर आये, लेकिन इसने उन्हें किसी भी तरह की चिन्ता में न डाला। वे तो उसी प्यार और मोहब्बत से बच्चों को पढ़ाते और उसी अपनेपन से गांववालों से बतियाते।

उस रात खा-पीकर निश्चिन्त मन मौलवी साहब अपनी खटिया पर बैठे हुक्का पी रहे थे कि अचानक दरवाजा खोल कर गांव के मुखिया का बेटा कृष्ण आ पहुंचा। "आओ बेटा" कह कर मौलवी साहब ने उसका अभिनन्दन किया, लेकिन यह क्या, वह तो उनके पैरों पर गिर कर सुबक उठा। मौलवी साहब चकरा गये, कृष्ण को बांहों में भर पुचकराते हुए पूछा—"क्या बात...

लेकिन उनका वाक्य खत्म नहीं हो पाया। वह बालक हिचकियों के बीच बोल उठा—"आप... आप यह गांव छोड़ कर दूर चले जायें, बहुत दूर, मैं आपके पांव पड़ता हूं।"

"लेकिन क्यों बेटे?" उसी धीरता से मौलवी साहब पूछ बैठे।

हाथ जोड़ कर रोता हुआ वह फिर बोल उठा—"मौलवी साहब, गांव के लक्षण ठीक नहीं दीख रहे, आपके लिए अब वह प्रेम और आदर गांववालों के मन में नहीं है, हिन्दू-मुसलमानों के द्वेष की जो आंधी सारे देश में छा गयी है उसने हमारे यहां के लोगों को भी नहीं छोड़ा। आज पंचम गांव के कुछ युवकों के साथ परामर्श कर रहा था..."

कृष्ण की वाणी ने साथ न दिया। मौलवी साहब ने बड़े प्यार से उसकी पीठ सहलाते हुए पूछा—"बता बेटा, क्या कह रहे थे वे लोग?"

"किसी दिन रात को यहां आकर..."

बालक गुरु की गोद में सिर रख कर फफक उठा।

गुरु ने प्रेम से उसे हृदय में भरते हुए कहा—"डर मत बेटा। मेरे छात्र जो करेंगे मेरे भले के लिए ही करेंगे। वैसे भी मैंने जिन्दगी भली-भांति गुजार ली है। अपनों के हाथों अल्लाह मियां को प्यारा हो जाना मेरे लिए दुःखदायी न होगा...।"

लेकिन कृष्ण किसी भी तरह यह सब सुनने के लिए राजी न था। बार-बार उनसे हाथ जोड़ कर विनती करने लगा—"चले जाइये मौलवी साहब, यहां से कहीं बहुत दूर। आपको यह गांव छोड़ना ही पड़ेगा। मेरे पांच साथी बाहर हैं। आज रात ही आप यहां से चले जाइये, हम गांव की सरहद के पार तक आपको सामान के साथ पहुंचा आयेंगे। जल्दी कीजिये मौलवी साहब, कहीं..."

मौलवी साहब ने कृष्ण को अपने पास खींच लिया, बोले—"देख बेटा, जिस जमीन के टुकड़े पर मैंने जिन्दगी-भर प्रेम और मोहब्बत लुटायी वहीं से आधी रात के अंधेरे में चोरों की तरह भाग निकलना मुझे कतई गवारा नहीं है। इस दुनिया में क्या ठीक है और क्या गलत इसके बारे में भी मैं नहीं सोचता। अल्लाह जो चाहेगा वही होगा। इस मिट्टी में मेरे लाल की, मेरी बीवी की सोंधी खुशबू अभी भी महक रही है, इसी की पगडण्डियों में खेल रहा है मेरा बचपन, यहीं खेतों से झांक रहा है मेरा यौवन और यहीं की हवाओं में तैर रहा है मेरा बुढ़ापा—सारे जीवन के सार को छोड़ कर दर-दर भटकने कहां जाऊं? बोल बच्चे! तुम लोगों को छोड़ कर क्या करूं, कहां जाऊं? यदि मेरी मौत यहीं बदी है तो मरूंगा मैं अपनी ही

जमीन के टुकड़े पर। यहां से भाग कर तो मेरा जीवन मृत्यु के जैसा बन जायेगा और बेटे, यह याद रख, कायर ही मुसीबतों से भाग खड़ा होता है, तेरा यह मौलवी कभी कायर न कहलायेगा...।"

कृष्ण निरुत्तर हो गया। दोनों हाथ ऊपर आकाश की ओर उठा कर भगवान् से इतना ही कह पाया—"ईश्वर! मेरे मौलवी साहब की रक्षा करना। तेरे भरोसे इन्हें यहां छोड़े जा रहा हूं, कहीं साथ न छोड़ देना...।"

कृष्ण चला गया। मौलवी साहब चारपाई पर लेट गये। लेटते ही उनकी आंखों के सामने अपने जीवन के सुखद चित्र एक-एक कर उभरते ही चले गये। बार-बार उनके मन में यही प्रश्न गूंज रहा था—"क्या इन्सान की मोहब्बत बुलबुले के जैसी होती है? क्या प्रेम की जड़ इतनी कमजोर होती है कि हवा के हलके-से झोंके से उखड़ जाये?"

फिर उन्होंने ठण्डी आह भर कर सोचा—"क्या आज की रात मेरी आखिरी रात होगी?"

वे उठे, मोहम्मद साहब की जीवनी के कुछ प्रसंग पढ़े और फिर निश्चिन्त हो सो गये। सपने में उन्हें पढ़ा हुआ प्रसंग दीखा—मोहम्मद साहब निर्जन में सो रहे हैं, मौका देख कर उनका कोई शत्रु उन्हें मारने के इरादे से आया, लेकिन मोहम्मद साहब के होठों पर फैली शान्त मुस्कान, उनके चेहरे से टपकती शान्ति को देख दुश्मन का हाथ उठा का उठा रह गया—किस शक्ति ने उस हाथ को प्रहार करने से रोका?

सपने में मौलवी साहब की आंखें तर हो आयीं। वे बोल उठे—"या अल्लाह! तेरी शक्ति आकाश के जितनी है, इन्सान यदि पाक हो तो फिर उसे डर किसका? दुनिया की कोई भी शक्ति उसका बाल भी बांका नहीं कर सकती।"

मौलवी साहब की आंख खुल गयी।

मुख्य दरवाजे पर आहट हुई, मौलवी साहब चुपचाप लेटे रहे, आवाज बन्द हो गयी, लेकिन दो पल के लिए। लेटे ही लेटे उन्होंने यह दृश्य देखा—दरवाजा खुला, एक के बाद एक तीन छायाएं चुपचाप अन्दर घुसीं। वे पहचान गये—ये तो पंचम, श्याम और गिरधारी हैं—मेरे भूतपूर्व छात्र!! पंचम के हाथ की चमकती कटार ने गुरु को जरा भी भयभीत न किया, वे उसी तरह चुपचाप लेटे रहे।

लेकिन... प्रहार के लिए उठा हुआ हाथ अचानक रुक क्यों गया? शिष्य काठ का-सा बन गया। उसकी इस हालत ने मौलवी साहब को बोलने पर मजबूर कर दिया—"पंचम बेटे, क्या सोच रहे हो? जो करना है कर डालो।"

स्तब्ध पंचम कटार के साथ कटे पेड़ की तरह धम् से धरती पर गिर पड़ा। उसके साथी भी अपने-आपको संभाल न पाये।

खाट से उठ कर गुरु ने फिर कहा—"बेटे, जो करना चाहते हो कर लो, मैं तुम्हें रोकूंगा नहीं...।"

तीनों की मनोदशा एक जैसी थी—"हाय! आज यह धरती फट क्यों नहीं जाती, यह आकाश हम पर इसी क्षण टूट क्यों नहीं पड़ता?"

गुरु का प्रिय शिष्य पंचम अपने-आपको मन ही मन कोस रहा था—"रे नीच, पापी! नब्बे वर्ष के अपने पूज्य गुरु का अहित सोचने से पहले तूने स्वयं आत्मघात क्यों न कर लिया! तेरे अक्षम्य अपराध के सामने भी यह देवदूत प्रेम की मन्दाकिनी बहा रहा है। धिक्कार है तुझे, धिक्कार है!!'

गुरु की प्रेम-गंगा फिर फूट निकली—"पंचम, याद हैं वे दिन जब अपने लाल के अल्लाह को प्यारे हो जाने पर मैंने तुझे बेटे की तरह पढ़ाया-लिखाया... खैर, मैंने अपना धर्म निभाया, आज हिन्दू-मुसलमानों के विद्वेष की भड़कती आग में मुझे झोंक कर तू अपने कर्तव्य का पालन कर, मेरी कोई शिकायत न होगी तुझसे, तुम सब मेरी आंख के तारे थे और हमेशा रहोगे...।"

दूध जैसी चांदनी में नहाया हुआ मौलवी साहब का चेहरा आंसुओं की चमक से और भी दमकने लगा। सारे कमरे में चांदनी उतर आयी। पंचम, श्याम और गिरधारी—इन तीनों के अन्दर भी उसकी छटा बिखर गयी।

मौलवी साहब ने देखा—श्याम और गिरधारी उनकी ठण्डी पड़ी चिलम को भरने के लिए रसोईघर की ओर मुड़े, उधर बार-बार आंखों को पोंछता हुआ पंचम रसोई में अंगीठी सुलगा रहा था।

भीगे हृदय के साथ गुरु अपनी चारपाई से उठ कर प्रेम के उस अगाध सागर में आकण्ठ डूबने को उत्सुक जल्दी-जल्दी रसोईघर की ओर कदम बढ़ाने लगे।

—वन्दना

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनूं
श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनूं (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमां के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगाकर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो॰ - झुंझुनूं — ३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन — (०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स — २३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

– श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: **1st April 2016**
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra
Mother of Nanak, Grade 4 and Nritu Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon